

२
००

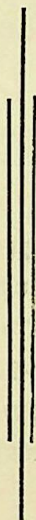
जीवन मुक्त विवेक

परमहंस स्वामी रामेश्वरानन्द
सरस्वती

तरङ्गिणी प्रकाशन प्रयाग

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जीवन्मुक्त विवेक



स्वामी रामेश्वरानन्द



तरङ्गिणी प्रकाशन
प्रयाग

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations
प्रथमावृत्ति १९६६

प्रकाशक

बालगोविन्द अग्रवाल

तरङ्गिणी प्रकाशन

प्रयाग

अनन्त श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य, तपत्यागमूर्ति
ब्रह्मविद्वन्निष्ठ असम्प्रज्ञात समाधिनिष्ठ
महर्षि रामेश्वरानन्द सरस्वती
ग्राम-पोस्ट-इस्मायलगंज
जिला-इलाहाबाद
(उत्तर प्रदेश)

(C) तरङ्गिणी प्रकाशन, प्रयाग

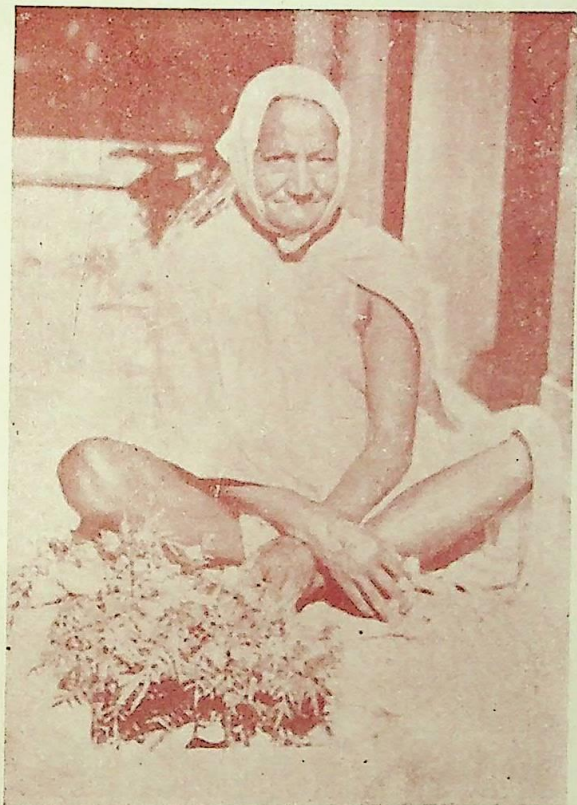
मूल्य तीन रुपये मात्र

सजिल्द चार रुपये

मुद्रक :

ओंकार प्रेस, प्रयाग

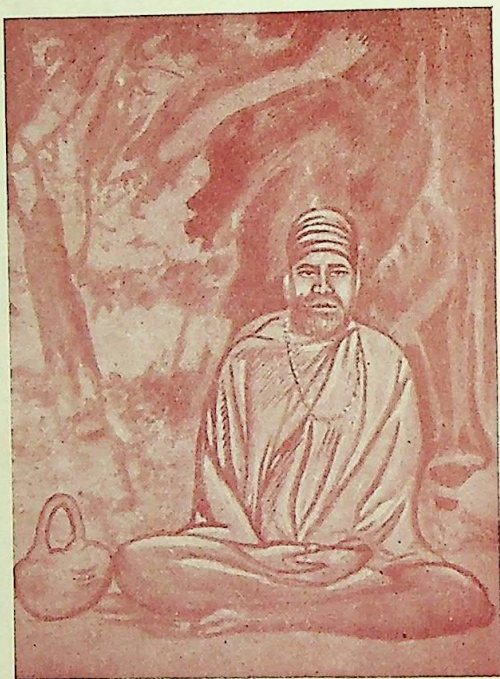
ग्रन्थकार



अनन्त श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य, तपत्याग मूर्ति
ब्रह्मविद्वरिष्ठ असम्प्रज्ञात समाधिनिष्ठ
महर्षि रामेश्वरानन्द सरस्वती

समर्पणम्

शान्तं दान्त वरं तितुक्षुप्रवरं सर्वज्ञयोगीश्वरं
स्वात्मध्यानपरं महेशमपरं संन्यास दीक्षा धरम्
भक्ताऽभीष्टकरं महाभयहरं ब्रह्मस्वरूपान्तरं
राधेश्यामसरस्वती यतिवरं वन्दे परं सद्गुरुम्



अनन्त श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्यतपत्याग मूर्ति
ब्रह्मविद्वरिष्ठ असम्प्रज्ञात समाधिनिष्ठ
महर्षि राधेश्याम सरस्वती जू देव महाराज

ॐ श्री सद्गुरु परमात्मने नमः

प्रकाशकीय दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक जीवन्मुक्त विवेक अनन्त श्री मत्परमहंस योगीन्द्र रामेश्वरानन्द सरस्वती जू महाराज ने अपने जीवन काल में कई वर्ष पूर्व मुझे प्रकाशनार्थ निज हाथों से सौंपा था। स्वामी जी ने आनन्द विभोर होकर निज वाणी द्वारा उपदेश किया, एवं श्री राधे चरण जी ने लेखनीवद्ध किया। अतः पुस्तक में त्रुटि यदि कोई रह गई है तो सम्मानित महात्मा गण एवं विद्वानों के द्वारा परामर्श प्राप्त होने पर द्वितीय संस्करण में सुधार करने का प्रयास किया जायगा। निजानन्द में लीन अनन्त श्री मत्परमहंस योगीन्द्र मग्नानन्द सरस्वती जू देव महाराज, अनन्त श्री मत्परमहंस योगीन्द्र श्री राधेश्याम सरस्वती जू देव महाराज, और अनन्त श्री मत्परमहंस योगीन्द्र रामेश्वरानन्द जू देव महाराज के आन्तरिक अनुभवात्मक उद्गार हैं। इसमें छन्द की गवेषणा करना, पङ्कजपरागरसलोलुप रसास्वादनवंचित भृङ्गभ्रमण के सदृश है। ग्रन्थ की विशेषता यह है, कि गद्यात्मक एवं पद्यात्मक वचनों में योग, भक्ति और ज्ञान का उपादेय सारा रहस्य सिन्धु को बुन्द में भर दिया है। जिसे गायन करते हुये अविद्यानिशा प्रसुप्त मूढ़जन भी वैराग्य वायु के झकोरों से जागकर अपने असूत्य मानव जीवन को प्रकाश में लाकर लक्ष्य निर्धारण, एवं कर्म, उपासना, ज्ञान का सरल मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। वेद, शास्त्रों के सारगर्भित उपदेश, अनुभवगम्य उद्गार, अत्यन्त विलम्ब के पश्चात् यह सद्ग्रन्थ मुद्रित होकर साकार रूप धारण कर सका।

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

बालगोविन्द अग्रवाल

पूज्य प्रवर स्वामी रामेश्वरानन्द जी

एक भाव भीनी श्रृद्धांजलि !

मई सन् १९५१ की बात है, जब स्वामी जी से मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ था, लगता है जैसे आज भी वह दिव्य मूर्ति मेरे सम्मुख है— और धारा प्रवाह प्रवचन करती हुई कोटि २ शंकाओं का समाधान करती हुई अनन्त अनुभवों का आनन्द प्रदान कर रही है। उन दिनों में प्रयाग जनपद की तहसील सोराम में केन्द्रीय अन्तः शुल्क विभाग के निरीक्षक के पद पर नियुक्त था। यद्यपि इस्माइल गंज के पास उदयचन्द्रपुर तलैया बाबा की भी कुटी विशेष प्रख्यात थी और विगत तीन वर्षों से सरकारी कार्य वश इस्माइल गंज आना जाना हुआ करता था, किन्तु कुटी के दर्शनों की लालसा विशेषकर स्वामी जी के गुरु श्री राधेश्याम सरस्वती द्वारा लिखाई गयी पुस्तक 'अनुभवालोका' पढ़ने के पश्चात् जग उठी और फिर मैं इस प्रलोभन का संवरण न कर सका। एक दिन लगभग ४ बजे अचानक एकाकी कुटी पर पहुँच ही गया। गर्मी के दिन थे, और मैं सरकारी कार्य के सिलसिले में उधर गया था, और वर्दी में ही था। स्वामी जी को सुशुप्तावस्था में देखकर मैं चुपचाप उनके पलंग के निकट नीचे फर्श पर बैठ गया। लगभग पाँच सात मिनट बाद ही स्वामी जी उठ बैठे और बोले, 'जल पीने की इच्छा है?' मैंने कहा, 'अभी घूप में साइकिल से चला आ रहा हूँ, थोड़ी देर बाद पी लूँगा।' बिना कुछ परिचय आदि पूछे ही इन्होंने एकाध मिनट रुकने के बाद ही धारा

प्रवाह प्रवचन करना प्रारम्भ कर दिया। किसी आध्यात्मिक जिज्ञासु की सारी शंकाओं का समाधान करते हुए कर्म, उपासना तथा ज्ञान काण्ड की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण करने लगे। उस समय उनकी वाणी सर्व साधारण के लिए नहीं थी। उसमें गूढ़ आध्यात्मिक गुणधर्मों को सुलभाने का प्रयत्न था, गीता उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर।

यह सोचकर मेरा मन आश्चर्य चकित रह गया कि स्वामी जी में किसी आगन्तुक के अन्तःकरण के अध्ययन करने की अपूर्व क्षमता है; वरना किसी खाकी वर्दी व्यक्ति को पहले पहल देखकर एकाएक ब्रह्म भूमिका का विश्लेषण प्रारम्भ करना कोई आसान बात नहीं है। और जब वे धारा-प्रवाह विश्लेषण कर ही रहे थे कि बीच में मैंने पूछ दिया कि 'बुद्धि कैसे निर्मल हो, तब तो वह गद्गद् हो गये और अपूर्व आह्लाद भरे स्वर में कह उठे, 'इसीलिए तो मैंने कहा था कि वक्ता से श्रोता का स्थान ऊँचा है, गुरु जी की कृपा तुम पर हो गयी है और तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो चुका है, मिलेगा, अवश्य मिलेगा'..... और उसके थोड़े दिनों बाद दूसरी तीसरी भेंट में ही उन्होंने अगम्य ब्रह्म ज्ञान की गूढ़ गुणधर्मों को ऐसा सुलभा दिया जिससे मुझे पहली बार इस वाक्य की सार्थकता प्रतीत हुयी कि विन गुरु होइ न ज्ञान।' वास्तव में सारा पोथी पांडित्य, सारा ज्ञान तब तक सार्थक नहीं होता जब तक कि सद्गुरु का साक्षात्कार नहीं होता।

स्वामी जी का जन्म वसंत पंचमी की पावन तिथि पर आज से १०० वर्ष पूर्व सम्वत् १९२५ में हुआ था। आपकी जन्म भूमि तीर्थ राज

प्रयाग से लगभग १० मील दूरी पर गाँव सराय लाल खातू उर्फ शिवगढ़ परगना सोराम में हुआ था। आपके बाबा का नाम श्री अम्मर मिश्र था। आप के पिता का नाम श्री बली मिश्र तथा माता का नाम श्रीमती जानकी था। स्वामी जी पाँच भाई थे, सर्व श्री रामसुचित, रामसुख, बालगोविन्द, रामस्वरूप (स्वामी जी) तथा रामदत्त। श्री रामदत्त जी अब भी विद्यमान हैं।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी का जीवन चरित्र लिखना मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिये सरल कार्य नहीं है और उनकी आभ्यान्तरिक उपलब्धियों के विवेचन के बिना अधूरा ही रहेगा। अतः यहाँ उनमें सम्बन्धित बाह्य जानकारी के विश्लेषण से ही संतोष ग्रहण करना होगा। उन्होंने एक शिष्य के रूप में गुरु सेवा का ज्वलंत उदाहरण स्थापित कर दिया। जिस लगन और श्रद्धा से ४० वर्ष तक निरन्तर अपने गुरु स्वामी राधेश्याम सरस्वती की सेवा की है और वह भौतिक बन्धनों में मभी नहीं मिल सकती। स्वामी जी के गुरु श्री राधेश्याम सरस्वती प्यार से इनको 'महन्त' कहा करते थे। स्वामी जी को पाकशास्त्र, वैद्यक तथा जड़ी बूटियों का विशेष ज्ञान था। अपने बायावरी समय में विभिन्न पर्वतों तथा वनों में इस ज्ञान का उपार्जन किया था। यहाँ तक कि उन्होंने जड़ी बूटियों के मिश्रण से सोना तथा पारा तक बनाने में भी सफलता प्राप्त कर ली थी किन्तु अपने जीवन में निजी स्वार्थ अथवा अर्थोपार्जन में इसका कभी प्रयोग नहीं किया। भोजन बनाने में जिस प्रेम और निष्ठा का परिचय देते थे, वह बड़े-बड़े गृहस्थों में भी उपलब्ध नहीं है, यद्यपि स्वयं दिन में एक बार निकटवर्ती ग्राम इस्माइल गंज के पाँच

घरों से मधुकरी (भिक्षा) द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते थे । वर्ष में दो-तीन भंडारे तो करते ही थे यदा कदा प्रेम वश अपने भक्तों को भी आमन्त्रित करते थे । अपने भोजन बनाने की निपुणता का परिचय देते थे । अधिक नहीं कम से कम ५-६ बार तो मुझे ही उनके हाथ से प्रनका मधुर प्रमद ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जो कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता । भोजन में शुद्ध सात्विकता, अनुपम मिठास तथा खाद्य तत्व रहता था । अपने प्रेमियों को विशेषकर पूड़ी, कचौड़ी, हलुआ; खीर तथा चूरमा खिलाया करते थे । उनकी वाणी में उल्लास, मधुर्य, प्रेरणा, ओजस्विता तथा तीव्रता परिलक्षित होती थी । शरीर-त्याग के समय २७ वर्ष की अवस्था में भी उनके शरीर में जो स्फूर्ति थी, वह अकथनीय और अन्यत्र दुर्लभ है । जिस लगन और श्रद्धा से महन्त ने अपने गुरु की सेवा की, वह अन्यत्र परिलक्षित नहीं होती है । स्वामी जी अपने गुरु के लिये भोजन बनाकर देना वस्त्रों का प्रबन्ध करना तथा एक सेवक की भांति उनकी छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करना अपना परम धर्म समझते थे । अपनी किसी उपलब्धि को आजीवन अपने गुरु की कृपा ही मानते थे । घोर तपस्या, अनुपम त्याग तथा कर्मठ जीवन के आधार पर स्वामी जी का जीवन कर्म, उपासना एवं ज्ञान की पवित्र त्रिवेणी बन गया था, जिसमें स्नान कर असंख्य श्रोता तथा भक्त भवसागर पार करने की क्षमता प्राप्त करते थे । स्वामी जी को अपने गुरु की लगभग सभी क्षमतायें प्राप्त थीं । भूत, वर्तमान तथा भविष्य को पहचानने की क्षमता उनमें थी और वे प्रेमियों, भक्तों का इसी आधार पर उचित मार्ग निर्देशन किया

करते थे और सद्कर्म कराकर उनके पाप क्षीण कर देते थे । लौकिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में शिष्य तो उन्होंने इने गिने ही बनाये होंगे; क्योंकि वे प्रचार तथा विज्ञापन से बहुत दूर थे और केवल अधिकारी को ही उसकी अवस्था के अनुसार उपदेश देते थे । विशुद्ध अधिकारी पाकर तो उससे किसी रहस्यों के अनावरण करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे । “गुढ़ तत्त्व न साधु दुरावैं, सम्यक् अधिकारी जो पावैं” प्रायः कहा भी करते थे । स्वामी जी अपने गुरु की लीलाओं की चर्चा करते थे और चर्चा करते-करते उनके प्रेम में प्रायः गद्गद् हो जाते थे । उन्होंने अपने गुरु की स्वप्न में भी अवज्ञा नहीं की और उनके ही निर्देशों पर अपना जीवन व्यतीत किया । उन्हीं की आज्ञा के अनुसार सन्यास लेने के बाद भी एक बार अपनी मरणासन्न माँ को दर्शन देने के लिये उनके अत्यधिक अनुरोध करने के बाद ही वहाँ गये थे और कुछ घंटों के बाद ही वहाँ से वापस आ गये थे । रात्रि निवास वहाँ नहीं किया । स्वामी जी इस प्रसंग का बड़ा मार्मिक विवरण देते थे । जिस समय अपने गाँव शिवगढ़ में गेरुये वस्त्रों में प्रवेश किया तो गाँव के नर-नारी प्रेम विह्वल हो उनके दर्शनार्थ उमड़ पड़े । उनकी वीमार माँ अनन्त प्रेम में विह्वल हो उठीं । थोड़ी देर तक अपने कुटुम्बियों तथा आपवासियों से कुशल वार्ता के पश्चात् एकान्त में अपनी माँ को ज्ञानोपदेश दिया । ममतावश पहले तो माँ ने बड़ा आग्रह किया, बहुत रोई और अनुरोध किया कि वे वहीं रह जायें किन्तु जब उन्हें यह भली-भाँति विदित हो गया कि उनका बेटा एक महान आत्मा है और उसमें जन-जन को भौतिक बन्धनों से मुक्त करने की अपूर्व क्षमता है तथा ‘वसुधैव

कुटुम्बकम्' ही जिसका मूल मन्त्र हो गया है तब वे मोह निवृत्त हो गयीं। ज्ञानोपदेश पाकर वे भी मोह बन्धन से छूट गयीं। उनको पूर्ण ज्ञान हो गया कि यह शरीर मेरा नहीं, जब 'मेरा हाथ', 'मेरा पैर' कहते हैं तो इससे विदित होता है कि मैं हाथ-पैर अथवा शरीर का कोई अंग नहीं हूँ। अथवा मैं इससे भिन्न कुछ और हूँ—विशुद्ध आत्मा जो अजर, अमर और अविनाशी है। उनको ज्ञान ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास भी हो गया कि अपने पुत्र का यह अन्तिम सम्पर्क हूँ। अभूतपूर्व भगवत् प्रेरणा का परिणाम था। इस अन्तिम मिलन वेला में उन्होंने ज्ञानोपदेश ग्रहण किया और निर्वाण स्वरूप अयमात्मा ब्रह्म, इदमित्थ ब्रह्म, अहम् ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि आदि महा मन्त्रों के सूक्ष्म तत्त्व ग्रहण करके जीवन की सार्थकता प्राप्त करके धन्य हो गई, 'पुत्रवती जुवती जग सोई, रघुपति भगनु जासु सुनु होई।'।

स्वामी जी बड़े सरल स्वभाव के थे। हर प्रकार के व्यक्ति से उसकी लौकिक समस्याओं तथा घरेलू झंझटों के सुलभाने में बड़ी मदद करते थे। निकटवर्ती गाँव के आस-पास के लोग बड़ी दूर-दूर से उनके पास आया करते थे। स्वामी जी को उसकी, ज्ञानोपलब्धि का परिचय तो उनकी प्रस्तुत पुस्तक 'जीवनमुक्ति विवेक' से ज्ञात होता है। स्वामी जी के उपदेशों में किसी प्रकार की प्रचार प्रवृत्ति नहीं थी। उन्होंने न तो किसी नवीन पन्थ का अनावरण किया और न शिष्य ही बटोरे। सच्चे सन्त की भाँति अहैतु की कृपा उनके जीवन का मूल मन्त्र था। सच्चे साधु तथा आदर्श गुरु के लक्षण उनमें विद्यमान थे। इसी कारण वे पूज्य थे। विशुद्ध अधिकारी पाकर स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हो जाया

करते थे। और उससे किसी प्रकार का दुराव नहीं करते थे। और इतनी उदारता दिखाते थे कि उसे क्या पावें क्या दे दें, सभी थोड़ा है। एक बार मैंने 'अनुभवालोका' पुस्तक के पुर्नमुद्रण का प्रस्ताव रखा। यह बात सम्भवतः सन् ५३ की है। लगभग ३६ वर्ष पहले सन् १९१७ में इसका प्रकाशन हुआ था और इसकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं थी। स्वामी जी ने कहा लिखा हुआ तो बहुत कुछ पड़ा हुआ है किन्तु जब तक उसको कार्य रूप में परिणित न किया जाये तब तक उसकी क्या सार्थकता। फिर भगवत् कृपा से जिज्ञानु तो मार्ग दर्शन प्राप्त ही कर लेते हैं। मैंने फिर आग्रह किया कि मैंने भी तो इस कुटी को "अनुभवालोका" पुस्तक पढ़ने के बाद ही देखने की इच्छा की थी। वैसे तो आजकल कुटियों, आश्रमों, पुस्तक, उपदेशक, गुरुओं की कमी नहीं है जिससे साधारण व्यक्ति को प्रायः धोखा हो जाया करता है और वह सत् असत् में विवेक नहीं कर पाता। अतः प्रकाशन की सार्थकता है। मेरे आग्रह को स्वामी जी अस्वीकार न कर सके और कुछ समय बाद इसका दूसरा प्रकाशन करवाया तथा जिज्ञानुओं, भक्तों, भारत के विभिन्न आश्रमों तथा त्रिवेणी के माघ मेले व कुम्भ पर्व पर इन पुस्तकों का वितरण करवाया। स्वामी जी के वेदान्त के उपदेशों का सूक्ष्म चिन्तन के आधार पर ही उनकी प्रेरणा से ही मुझे "मेरी आयु—काल की सीमित परिभाषा" पंक्तियों का प्रणयन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिसमें जीवन दर्शन को कवित्व देने का तुच्छ प्रयास किया है। इसे सुन कर निराला जी बड़े प्रसन्न हुए थे और मुझे पुस्तकाकार काव्य संग्रह करने का आदेश दिया था जिसे बाद में 'तरंगिणी' नामक अपने काव्य संग्रह में प्रकाशित करके उनकी आज्ञा का पालन किया।

(१३)

पूज्यप्रवर स्वामी जी को भी मैंने इसे सुनाया था और वे गद्गद् हो उठे थे । उनके प्रसाद स्वरूप उपलब्ध इन पंक्तियों को भी स्वामी जी की इस पुस्तक में उनकी श्रद्धाञ्जलि रूप में पाठकों की सहज जिज्ञासा को शान्त करने के लिए उद्धृत कर रहा हूँ । उनकी ज्ञान गरिमा, उनकी गहरी अनुभूति तथा उनकी प्रकाण्ड प्रतिभा का परिचय तो प्रस्तुत कृति “जीवन मुक्ति विवेक” में ही मिल सकेगा, जिसका रस पान तो जिज्ञासु पाठक करेंगे ही ।

स्वामी जी माघ कृष्ण १० सम्बत् २०२२ के दिन प्रयाग त्रिवेणी स्नान करने अपने भक्तगण श्री राधे चरण, भगवत् तथा सुरजू के साथ गये और इसी दिन अपने शरीर त्याग की सूचना उन्हें दे दी । माघ शुक्ल ५ सम्बत् २०२२ को जुकाम, सर्दी आदि से शरीर शिथिल हुआ । श्री राधे चरण, श्री महादेव शुक्ल आदि ने सेवा सुश्रूषा बड़े मनोयोग से किया । तत्पश्चात् सप्तम भूमिका में स्थित परमहंस महात्मा २१ वें दिन शनिवार माघ शुक्ल १५ सम्बत् २०२२ को ६ बजे रात्रि को परम गति को प्राप्त हो गये ।

श्री राधे चरण और श्री कल्लूमल अग्रवाल के अथक प्रयास से स्वामी जी की सुन्दर संगमरमर मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा सहित आश्रम में माघ शुक्ल ११ सम्बत् २०२३ को स्थापित हो गयी ।

आश्रम श्री रामेश्वरानन्द जी सरस्वती)
 पत्रालय—इस्माइलगंज)
 जनपद —प्रयाग }
 नवरात्रि चैत्र शुक्ल द्वितीया)
 सम्बत् २०२५)

रमेशचन्द्र अवस्थी
 ३१-३-६८

मेरी आयु—काल की सीमित परिभाषा

मैं अनादि हूँ, मैं अनन्त हूँ
मैं शाश्वत,
चिर प्रिय बसन्त हूँ ।
आज अचानक, अनजानी सी;
किस विभ्रम वश पृष्ठ रहीं
चिर प्रणय संगिनी;
मुझसे मेरी आयु—काल की सीमित परिभाषा !
उस असीम को कुछ वर्षों में,
आज बांधने को मन की
यह कैसी धूमिल वृत्ति—
रेणु की अस्थिर सी यह भित्ति—
रम्य रेणु जिसके कण-कण में,
मैंने देखी,
छिपी सृष्टि की सारी आशा—
जिसके कुसुमित वन फूलों में,
छिपा हुआ था मैंने देखा
भव्य अलौकिक स्वर्ग;
—और हथेली में प्रतिबिम्बित
युग युग की अभिताभ कहानी ।

एक घड़ी में ही शाश्वत का
 छिपा हुआ इतिहास—
 चिरन्तन सत्य और शिव सुन्दर,
 पुनर्जन्म के, बाद
 चेतना भी,
 धुंधली स्मृति सी,
 जगा रही चिर प्रिय अतीत के
 गहरे गहरे घाव !
 मेरा ही प्रतिबिम्ब अनल है;
 क्षिति, जल, अनिल, गगन यह नीलम,
 शत-शत सूर्य चन्द्र ये तारे
 मेरे ही प्रकाश से विकसित
 करते ज्योतिष
 जल, कल जल, थल, मरुस्थल
 मेरे ही चेतन से उपजे—
 उद्जन वम, ध्वंसक अंगारे !
 वर्तमान—क्रीड़ा स्फुलिंग है
 भूत भविष्य—मन का कारा !
 सत रज तम का खेल खेलती,
 सदा बदलती नश्वर काया !
 इस काया के आंचल में छिप,
 पुञ्जीभूत पवित्र ज्योति सा मुक्त

युगों से देख रहा हूँ—
इस विराट जग के स्वरूप को
मानों हो अपनी ही छाया !
आदि चिरन्तन शक्ति
कल्पना के पंखों पर उड़कर—
धरे वासना का शरीर
अब भटक रही है—
और चकित सी,
भूली सी,
तुम पूछ रही हो,
मांसों की क्रीड़ा वेला में,
विस्मृति के इस नवावरण में,
मुझसे मेरी आयु—
वासना की असीम अभिलाषा,
काल की सीमित परिभाषा !

❀ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ❀

जीवन्मुक्त-विवेक

भूमिका

संसार सागर की रचना भगवान ने अपनी सत् रूप माया शक्ति धारण करके की। भगवत् शक्ति भगवान् से न भिन्न है और न अभिन्न ! उसी शक्ति ने ईश्वर रूप धारण किया। अल्पज्ञता के कारण जीव बन गया। ईश्वर का प्रतिबिम्ब ही जीव है। जीव अनेक में हो गया, अण्डज, पिण्डज, स्थावर तथा जंगम। इन चारों योनियों से चौरासी लक्ष योनि का प्रमाण पुराण में है। परन्तु ईश्वर की सृष्टि की चाह नहीं है। इसी चक्र में जीव घूम रहा है। संसार रूपी सागर से तरने के लिये भगवान ने मनुष्य का शरीर दिया और स्वयं दुःख-युगान्तर में अवतार धारण करता रहा और धारण करता चला जायेगा। ब्रह्मा ने चार वेद बनाये, छः शास्त्र ऋषियों ने बनाये, अद्वारह पुराण ब्रह्मसूत्र वेदान्त भगवान व्यास ने बनाया। वेद का चरित्र बहुत से ऋषियों ने बनाया जिसकी संख्या दी भी जाती है और नहीं भी दी जाती है। उन सबका अन्वय ब्रह्मसूत्र में पाया जाता है। इन सबकी रचना जिज्ञासु के समझने के लिये की गई है। वह समझ जायेगा तो अपने स्वरूप की खोज करेगा।

भगवत् पूर्ण है, राई भर भी उससे कहीं शेष नहीं है कहीं जड़ रूप से कहीं चेतन रूप से। जब तक जड़ के अन्दर चेतन नहीं देखा जायेगा तब तक अलक्ष रूप चेतन का बोध न होगा, बोध के ठिकाने पर जड़ और चेतन कहने में न आवेगा। श्री गोसांई जी ने भी कहा है—

“जो चेतन कहूँ जड़ करूँ ! जड़हि करै चैतन्य ॥”

“अस समर्थ रघुनाथ कहि। भर्जहि जीव ते धन्य ॥”

स्वयं श्री गुरु महाराज का कुछ काव्य जो अनुभवालोक ग्रन्थ तैयार होने के पश्चात् उपलब्ध हुए हैं उन्हें इस पुस्तक के अन्त में दिया गया है जो श्री हनुमान प्रेम चालीसा, गुरु महात्म, समयोग तीन भागों में है।

आख्यान—भगवत्-भजन का निशाना प्रथम राम-राम कृष्ण-कृष्ण शिव-शिव है। भगवान्नाम अनन्त है। यह तीन प्रकट है, यथा—
“नाम अनन्त अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार !

सुनि आश्चर्य न मानि हैं, जिनके विमल विचार ॥

महात्माओं का दर्शन, उपदेश, वाणी सत्संग करते-करते चित्त, मन तथा बुद्धि पवित्र हो जाते हैं तथा निर्मल विचार उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् जिज्ञासा पंदा होती है गुरु ढूँढ़ने की। गुरु के पास सब चीज होती है। उनकी गिरनी अर्थात् सन्दूक में सब कुछ भरा रहता है, किन्तु कोई थाह नहीं मिलती जब तक गुरु ताली नहीं देते। वह ताली सदैव से गुरु के पास रही है और रहेगी। उस ताली का नाम ब्रह्म-विद्या है। ब्रह्म-विद्या प्राप्त करने के लिये सत्पुरुषों के काव्यामृत पान करने तथा सत्संग सेवन करना ही अति उत्तम है। कर्तव्य करना ही हमारा कर्म है। जो कर्म किया जाता है उसी की उपासना की जाती है। उपासना परिपक्व होने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है। वही ज्ञान काण्ड है। भगवत् नाम लेना वाणी का कर्म है। भगवत्-नाम का प्रबोध करना मन की उपासना है। वाणी और मन का एकाकार करके चित्त पर ठहर जाना यही ज्ञान काण्ड है। यथा पंचदशी में लिखा है :—

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।

एतदेकपरत्वं च ब्रह्मःभ्यासं विदुर्बुधाः ॥

बुद्धिमान इसी को ब्रह्माभ्यास कहते हैं। जब तक कर्म उपासना द्वारा चित्त की एकाग्रता न होगी तब तब ज्ञानाभ्यास न होगा।

चित्त की वृत्ति पाँच प्रकार है—

(१) प्रमाण (२) विकल्प (३) विपर्यय (४) निद्रा (५) स्मृता ।

(१६)

(१) प्रमाण—तीन प्रकार का है (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) आगम । ज्ञानेन्द्रिय की समीपता भ्रम रहित है । जो ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं । किसी प्रत्यक्ष वस्तु के द्वारा जानना अनुमान कहा जाता है जैसे पर्वत में धुआँ । सद्वादी पुरुष जो कुछ देख कर उपदेश करता है उसको आगम कहते हैं ।

(२) वास्तव में जो वस्तु नहीं है परन्तु कल्पना कर लेना इसी का विकल्प नाम वृत्ति है ।

(३) मिथ्या ज्ञान को मिथ्या न जानना परन्तु सच जानना इसको विपर्यय कहते हैं ।

(४) संकल्प विषयों के ज्ञान न होने की तमोगुण सहित जो वृत्ति है निद्रा कहलाती है ।

(५) जिस वदार्थ का प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के द्वारा अनुमान किया जाय उसके स्वरूप की धारणा का नाम स्मृति है । इन्हीं पाँचों वृत्तियों को लेकर चित्त का धावा होता है अर्थात् इन्हीं पाँचों से चित्त की चंचलता उत्पन्न होती है ।

अभ्यास और वैराग्य दोनों की प्रबलता से चित्त की चंचलता शान्त होती है । चित्त की स्थिरता रखने के लिये जो यत्न किया जाता है उसका नाम अभ्यास है । प्राणास्पन्दन (फुरना) प्राण वायु की क्रिया; इन दोनों का ऐसा सम्बन्ध है कि एक के न होने से दूसरे का अभाव हो जाता है ।

अनित्य वस्तु को सत्य मानना उसकी निवृत्ति का नाम वैराग्य है ।

राग रहित अर्थात् चित्त का निरोध होना इसी को अभ्यास कहते हैं ।

इच्छा की धारणा जो आत्मा करता है वही इच्छा राग रूप बनती है । वह पाँच तत्व लेकर धावा करती है । एक के भी न होने से केवल चार से कुछ नहीं कर सकती ।

राग के पाँच प्रकार हैं—(१) प्रमाता में दोष (२) प्रमाण में दोष (३) प्रमेय में दोष (४) वस्तु ज्ञान जन्य संस्कार (५) अधिष्ठान का अज्ञान ।

इन पाँच वस्तुओं से कल्पना होती है—(१) प्रमाता उसे कहते हैं जो कल्पना कर अर्थात् अन्तःकरण उपहित चैतन्य उसमें भय लोभादि दोष हैं जैसे रज्जु में सर्प की कल्पना तभी होती है जब अन्तःकरण में भय दोष होगा अर्थात् सीपी में रजत की कल्पना अन्तःकरण में लोभादि दोष होने से ही होती है । ऐसे प्रमाता में भय लोभादि दोष होता है । और (२) दूसरे में जिसके द्वारा हो कर कल्पना हो उसको प्रमाण कहते हैं जैसे—नेत्रादि । (३) तिमिर दोष—प्रमाण का जो विषय अर्थात् जिसमें कल्पना हो जैसे रज्जु, बुक्ति इत्यादि । उसको प्रमेय कहते हैं । बुक्ति-रजत का आपस में सादृश है एक रूप होने से । इससे रजत की कल्पना होती है । रज्जु में सर्प का और बुक्ति में रजत का आभास सही नहीं होता । (४) वस्तुज्ञान जन्य संस्कार अर्थात् पूर्व इष्ट सर्प का संस्कार ही रज्जु में सर्प के अध्यास का हेतु है । (५) अधिष्ठान का अज्ञान अर्थात् रज्जु का विशेष रूप से अज्ञान और समान रूप से ज्ञान सर्प की कल्पना का हेतु है ।

इसी प्रकार आत्मा में संस्कार की कल्पना न होने के हेतु इन पाँच में से एक भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि जो कारण होता है, वह कार्य के पूर्व काल में होता है और यहाँ पर प्रमाता अन्तःकरण प्रमाण और प्रमाण नेत्र यह दोनों हेतु संसार की कल्पना के पूर्व होना चाहिये सो संसार के पूर्व यह दोनों वस्तु असिद्ध हैं क्योंकि अन्तःकरण और इन्द्रियाँ ही संसार हैं और संसार है कल्पित । तो फिर संसार के पूर्व काल में यह कैसे हो सकता है । इसी लिये प्रमाता में भय लोभादि दोष और प्रमाण में तिमिर दोष असिद्ध हैं । और तीसरे प्रमेय में सादृश्य दोष भी सिद्ध नहीं होता; क्योंकि आत्मा का और संसार का आपस में सादृश्य नहीं

अर्थात् आत्मा चैतन्य है संसार जड़ है। आत्मा नित्य है संसार अनित्य है। आत्मा प्रकाशक है संसार प्रकाश्य है। आत्मा निरावयव है संसार सावयव है फिर सादृश्य दोष भी नहीं सिद्ध हुआ।

चौथे वस्तु ज्ञान जन्य संस्कार भी असिद्ध है, क्योंकि पूर्व दृष्टि सर्प का संस्कार ही रज्जु में कल्पना का हेतु है और आत्मा में संसार की कल्पना के पूर्व तो संसार तीन काल में हुआ ही नहीं तो फिर पूर्व दृष्टि संसार का संस्कार किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ?

अधिष्ठान का सामान्य रूप से ज्ञान और विशेष अज्ञान भी सिद्ध नहीं, क्योंकि आत्मा चैतन्य निराकार अखण्ड स्वरूप है। उसका विषय सामान्य विशेष भाव तीन काल में बनता ही नहीं। इस प्रकार आत्मा में संसार की कल्पना का कारण पाँचों वस्तु असिद्ध होने से आत्मा में संसार को कल्पित कहना भी नहीं बनता; केवल चैतन्य का विलास ही है। वास्तव में यह संसार कुछ भी नहीं जैसे—बन्ध्या पुत्र, शशशृङ्ग शब्द मात्र ही सिद्ध है, इसी प्रकार संसार भी शब्द मात्र ही सिद्ध है। वास्तव में है कुछ नहीं स्वामी शंकराचार्य का कथन है कि—जैसे पापाण, वृक्ष, तृण, धान्य, भूमी ये सब नाश होने पर मृत्तिका स्वरूप हो जाते हैं वैसे देह, इन्द्रिय, प्राण, मन आदि जितने दृश्य पदार्थ हैं, वह सब नाश होने पर परमात्मन स्वरूप ही को प्राप्त होते हैं।

ब्रह्म ज्ञानी का स्वभाव वर्णन है चिन्ता और दीनता को त्याग कर समय पर भिक्षा लेकर भोजन करना और नदियों में जल पीना, स्वतंत्र होकर जहाँ चित्त लगे वहाँ बैठना और भय से रहित होकर श्मशान भूमि में चाहे वन में सोना। वस्त्र जो है उसको धोना व सुखाना व नंगा रहना तथा वेदान्त वन में बिहार करना इस प्रकार ज्ञानी का प्रमाण दिया जाता है।

(२) वशिष्ठ जी ने राम जी को उपदेश दिया है। यह दृष्टा जो पुरुष है और दृश्य जो जगत है उस दृष्टा और दृश्य के मिलाप में जो

बुद्धि में निश्चित आनन्द होता है और इष्ट के संयोग तथा अनिष्ट के वियोग का जो आनन्द चित्त में दृढ़ होता है वह आनन्द आत्मतत्त्व से उदय होता है। स्पंदरूप जिस आत्मानन्द से लव उठता है उसकी उपासना करो और दृष्टा दर्शन और दृश्य को वासना सहित त्याग करो जो दर्शन में प्रथम प्रकाश रूप है और जिस प्रकाश से यह तीनों प्रकाशित हैं, उस परमात्मा की उपासना करना चाहिये और जो निरायास, निर्मल और आभास रूप है; जिसमें मन के भाव का अभाव है, द्वितीया की कल्पना का अभाव है, अद्वैत रूप है उसकी उपासना करो और जो दोनों के मध्य में है और अस्ति, नास्ति दोनों के पक्षों से रहित प्रकाश रूप सत्ता है और सब सूर्य आदिक को भी प्रकाशता है उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। जो ईश्वर सकार है और हकार है अर्थात् सकार जिसके आदि में है हकार जिसके अन्त में है, वह अन्त से रहित आनन्द, अनन्त शिव परमात्मा सर्व जीवों के हृदयों में स्थित है और निरन्तर सोऽहं रूप हो कर उच्चारण होता है उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिये।

हृदय में जो ईश्वर है उसको त्याग कर जो और देव पाने का यत्न करते हैं वे मूर्ख हाथ में कौस्तुभमणि को त्याग कर रत्नों की वाञ्छा करते हैं।

जो सब आशाओं को त्यागता है उसको फल प्राप्त होता है और आशा रूपी विष की बेलि समूल नष्ट हो जाती है अर्थात् जन्म मरण आदिक दुःख नष्ट हो जाते हैं और फिर नहीं उपजते हैं। जो पदार्थों को अत्यन्त विरस रूप जानता है और फिर उनमें आशा बाँधता है वह दुर्बुद्धि गर्दभ है मनुष्य नहीं। जहाँ-जहाँ विषयों की ओर दृष्टि उठती है उनको विवेक से नष्ट करो कि—

जैसे इन्द्र ने वज्र से पर्वतों को नष्ट किया है जब इस प्रकार शुद्ध आचरण करोगे तब सम भाव को प्राप्त होंगे और उससे मन उपशम आत्म पद को प्राप्त होकर अक्षय अविनाशी पद पावेगा।

श्रुति का वाक्य है—“तै तहाँ ही लीन होता है कारण यह कि निर्गुण ज्ञानी पुरुष के मरने पर सूक्ष्म शरीर का संघात छूट जाता है तब वह वहाँ ही जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है उसमें लीन होते हैं। उनका ब्रह्म लोक यही है जिनकी दृष्टि ऐसी है अर्थात् जो कुछ है वह सब ब्रह्म है हम वही ब्रह्म हैं अर्थात् जो ज्ञानी पुरुष सर्व कामनाओं से रहित निष्काम पूर्ण काम केवल आत्म स्वरूप में स्थित है तिनके प्राणों का गमन परलोक में नहीं होता। वही जो ब्रह्म है उस ब्रह्म को प्राप्त होते हैं अर्थात् जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में नाम रूप छोड़ कर लीन हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान् ज्ञानी नाम रूप को त्याग कर परात्पर पुरुष में लीन होता है। यही वेदान्त शास्त्र का तत्त्वानुसंधान है। जो उस ब्रह्म को जानता है ब्रह्म ही होता है।

योग का प्रयोजन

महर्षि याज्ञवल्क ने कहा है—“चित्त की एकाग्रता और चैतन्य आत्मा चित्त से परे है, अतएव चित्त का प्रकाशक है। चित्त जड़ है आत्मा चैतन्य चित्त का जानने वाला है। अब चित्त की एकाग्रता के लिए वेद शास्त्र में जो कुछ कहा है सो ओंकार का जप व चार महा-वाक्य--(१) अहम् ब्रह्मास्मि (२) प्रज्ञानं ब्रह्म (३) तत्त्वमसि (४) अयमात्मा ब्रह्म। इससे चित्त शान्त होता है परन्तु ब्रह्मज्ञान होना असम्भव है। यदि पूर्व का संस्कार बलवन्त हुआ तो स्वरूप का ज्ञान होने में संशय नहीं है; क्योंकि संस्कार बलवन्त होने से प्रतिबन्धक का नाश करने वाला है। जब प्रतिबन्ध का नाश हुआ तो साक्षात् ब्रह्म का बोध होने में कुछ संशय नहीं है और यदि संस्कार बलवन्त नहीं हैं तो कर्म उपासना करके अन्तः करण शुद्ध होने से सद्गुरु की कृपा से स्वरूप का बोध होता है। आगे पूजा, तीर्थ, जप-तप, दान-पुण्य ये सब सहकारी होते हैं। इस जन्म में करने से प्रतिवाद (पाप) नहीं होगा। यह आगे सहकारी होंगे निष्कामता करने से। अर्थात् जैसा कर्म करेगा वैसा प्राप्त होगा।

‘गुरु धोवी शिप कापड़ा, साबुन सिरजन हार।

सुरति शिला पर धोइये, जगमग ज्योति अपार ॥’

अहै अथाह थाह संतन मे दरिया लहर समानी।

धीवर जाल लाइ का करिहैं मनहि होइगा पानी ॥

स्वामी शंकराचार्य जी का वाक्य है—

ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्तनिर्विकल्पकं।

केवलाखण्डचिन्मात्रं परं तत्त्वं विदुवुधाः ॥

ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान अर्थात् कर्त्ता, क्रिया, कर्म इन तीनों से शून्य, अनन्त, निर्विकल्प, केवल अखण्ड, चैतन्य स्वरूप, परमात्म तत्त्व को विद्वान् लोग जानते हैं। जैसे घट है तो उस घट का ज्ञाता मनुष्य होता है पर उस घट का ज्ञान मनुष्य में रहता है। जब घट है नहीं तो घट विषयक ज्ञान भी नहीं है और घट का ज्ञान वह मनुष्य भी नहीं हो सकता। जब आत्मा से अतिरिक्त कोई पदार्थ है ही नहीं तो आत्मा किस वस्तु का ज्ञाता होगा और कौन वस्तु का ज्ञान आत्मा में रहेगा इसी कारण आत्मा ज्ञातृ, ज्ञेय, ज्ञान शून्य है। इससे आत्मा सर्वज्ञ साक्षी रूप से पूर्ण है।

बुद्धेर्गुहायां सद्सद्विलक्षणां, ब्रह्मास्ति सत्यं परमाद्वितीयं ।
तदात्मना योऽत्र वसेद्गुहायां, पुनर्न तस्यास्ति गुह्यप्रवेशः ॥

बुद्धि रूप कन्दरा में सत् असत् से विलक्षण अद्वितीय जो ब्रह्म है उसी ब्रह्म का रूप होकर जो मनुष्य बुद्धि रूप कन्दरा में वास करेगा उस मनुष्य का उस कन्दरा में प्रवेश अर्थात् फिर जन्म न होगा।

श्री राम जी का वाक्य है—हे ! पक्षपात रहित सभा राम नाम है। सर्व नाम रूप वाङ्मन सहित दृश्य में अवाङ्मन सगोचर जो अस्ति, भाति, प्रिय, रूप आत्मा रम रहा है नाम पूर्ण हो रहा है उसका। उस अविद्यत्व सदा अपरोक्ष मनादिकों के साक्षी राम को जो अपना स्वरूप संशय रहित जानता है वह योगी ज्ञानी है सो अज्ञान रूपी समुद्र को ज्ञान रूपी सेतु बना कर अज्ञान तत्कार्य जो काम क्रोधादि राक्षस उनके स्वरूप से पृथक्ता का अत्यन्त भाव व मिथ्यात्व निश्चय रूप धनुष से मार करके निष्कर्तव्यता बुद्धि रूपी सीता सहित प्रारब्ध रूपी पुष्पक विमान पर बैठ कर इस संघात रूप अयोध्या में जीवन मुक्त रूपी सिंहासन पर स्थित होते हैं वही पुरुष राम जानना।

श्री भगवान् कृष्ण का वाक्य है—हे सर्व में आत्मोपमादर्शी अधि-कारी जनों ! अज्ञान तत्कार्यमनादि यह संघात समष्टि व्यष्टि क्षेत्र है।

इस क्षेत्र के न्यूनाधिक भावाभाव को तथा इसके धर्मों को जो चैतन्य जानता है उसका नाम क्षेत्रज्ञ है। वह क्षेत्रज्ञ ही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत का स्वरूप है। इस क्षेत्रज्ञ को अपना आप स्वरूप जानने से सर्व दुःखों की निवृत्ति होती है। इस क्षेत्रज्ञ का कोई क्षेत्रज्ञ नहीं है। इसी से स्वयं प्रकाश स्वरूप है। हे सज्जनों जैसे (ज्ञाता) कपड़े की गिरनी में एक ही इंजन आगे है हजारों कलें अलग-अलग काम की चलती हैं वैसे एक क्षेत्र रूप इंजन करके देह रूप गिरनी में इन्द्रिय, प्राण, मनादि अलग-अलग अपने-अपने काम की कला चलती है। यह स्वयं प्रकाश क्षेत्रज्ञ ही ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि का तथा हमारा तुम्हारा सर्व जगत का स्वरूप है। इसी के जानने से मोक्ष होता है।

सर्वदा वेदान्त पाठ करना चाहिये। वेदोक्त विधि-वाक्यों के अनुसार निष्कामता करके कर्म करना चाहिये तथा जो पुरुष साधन चतुष्टय सम्पन्न हैं वह पुरुष ईश्वर के विचार में अर्थात् वेदान्त शास्त्र में अधिकारी होता है अन्तः करण शुद्ध होने से। नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त इनका केवल चित्त शुद्धि के निमित्त प्रयोजन है।

श्रुति वाक्य—उपासना सास्तु चित्तैकाग्रम्।

उपासना का मुख्य प्रयोजन केवल चित्त की एकाग्रता के निमित्त है। तब परमात्मा के जानने की इच्छा होती है।

साधनानि नित्यानित्य वस्तुविवेकः।

अनित्य वस्तु का विचार इस लोक में और परलोक में फल भोगने की इच्छा न करना, शम-दम आदि साधन सम्पत्ति मुमुक्षुव मोक्ष होने की इच्छा होनी यही साधन चतुष्टय कहलाते हैं।

केवल ब्रह्म ही नित्य है उससे भिन्न समस्त वस्तु अनित्य है इस प्रकार विचार को नित्यानित्य वस्तु विवेक कहते हैं।

इस लोक और परलोक की इच्छा का त्याग देना तथा इच्छा निवृत्ति ही कल्याण करने वाली है। इस प्रकार की बुद्धि को इहामुत्र

फल भोग विराग कहते हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन से भिन्न जो अन्य तथा अन्तर इन्द्रिय से मन को हटा लेने ही को शम कहते हैं। इन्द्रियों का विषयों से हटा लेना ही दम कहलाता है। बाह्य इन्द्रियों का दमन करना अर्थात् विषय भोग न करने को उपरति कहते हैं।

शीतोष्ण, सुख-दुःख इत्यादि सहने को तितिक्षा कहते हैं। मन की एकाग्र अवस्था का नाम समाधान है।

श्री गुरुदेव के वचनों में तथा वेदान्त शास्त्र के वाक्यों में विश्वास करने को श्रद्धा कहते हैं। मुमुक्षु में जो इच्छा होती है उसको मुमुक्षुत्व कहते हैं। पूर्वोक्त साधन चतुष्टय युक्त होता है उसी को वेदान्त शास्त्र में अधिकारी कहते हैं। उसको सर्व विषय का उपदेश करना चाहिये। श्रुति वाक्य—तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात् वेदान्त का तात्पर्य यही है कि जीव चैतन्य और ब्रह्म चैतन्य को एक जानना। श्रुति वाक्य—बोध बोधक भाव लक्षणः। माण्डूक्य उपनिषद् में कहा गया है कि जीव ब्रह्म को एक समान जानना है। बोध्य बोधक नाम सम्बन्ध है जैसे अग्नि और चिनगारी का कोई सम्बन्ध नहीं है। बोध्य बोधक भाव तब तक है जब तक आत्मा को पहचाना नहीं। परमात्मा का पहचानना तब होगा जब गुरु की कृपा होगी, तब आप को आप पहचानेगा; नहीं तो अपने को पहचानेगा बड़ा दुर्लभ है। जीव ब्रह्म की एकता ही आनन्द की प्राप्ति है यही वेदान्त का प्रयोजन है। श्रुति वाक्य—ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति जो ब्रह्म वेत्ता होता है वह ब्रह्म का स्वरूप होता है ऐसे ब्रह्मविद गुरु के पास जाकर शिष्य को प्रश्न करना चाहिये। चार वेद, छः शास्त्र, अष्टादह पुराण आदि हैं सब जिसने अनुभव से सिद्ध किया है ऐसे गुरु के पास शिष्य को अवश्य जाना चाहिये क्योंकि ब्रह्मजानी ही संसार का आधार है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञान अज्ञान का लक्षण अज्ञान से आवरण, विक्षेप। ज्ञान ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान रूप प्रकाश से विलक्षण तथा अज्ञान रूप अंधकार होता है। प्रकाश स्वरूप आत्मा के

आगे बुद्धि, प्रबुद्धि का भान नहीं होता है; क्योंकि साक्षी असाक्षी होने से आगे इच्छा अनिच्छा कुछ नहीं है अवाचपद है ।

श्रुति वाक्य—तत्त्वतो ब्रह्म विद्याम् ।

यह वेदान्त शास्त्र के अधिकारी को जन्म मरण रूप संसाराम्नि से संतप्त होकर ऐसा जानकर त्याग रूपक सतगुरु के पास जाना चाहिये जो जिज्ञासु को साक्षात् ब्रह्म का बोध कराते हैं । वह ब्रह्म कैसा है । भिन्नाभिन्न से रहित है । चैतन्य ब्रह्म वाच अवाच से रहित है ऐसा ब्रह्म चैतन्य सत् चित आनन्द का रूपक हो के संसार का व्यापक रूप हो रहा है; क्योंकि सत् रूपक सत्ता से संसार वर्तमान है । कैसा है संसार चित्तमान वर्तमान है आनन्द तो वर्तमान और वर्तमान से रहित है जो अवाच है ।

श्रुति वाक्य—वस्तु सच्चिदानन्दमद्वयं ब्रह्म । अर्थात्—वह सत् चित् आनन्द अद्वितीय ब्रह्म है ।

उपरोक्त न्याय के विषय में लौकिक दृष्टान्त दिखाते हैं । रज्जु किसी समय भी वस्तुतः सर्प नहीं है; परन्तु जिस समय उसी रज्जु में सर्प का भ्रम होता है; उसी अवस्तु में वस्तु के भ्रम को अज्ञान कहते हैं । यही अध्यारोप है ।

इस अज्ञान को समष्टि रूप एक और व्यष्टि रूप अनेक बोलकर व्यवहार किया जाता है ! जैसे वन व जल ! वन एक है वृक्ष अनेक हैं वैसे जल एक है धारा अनेक हैं । उसी प्रकार चैतन्य स्वरूप ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, अव्यक्त, अन्तर्यामी, जगत्कारण और ईश्वर इन शब्दों से व्यवहार किया जाता है । जो सम्पूर्ण अज्ञान के प्रकाश का हेतु है वही सर्वज्ञ है । ईश्वर की उपाधि स्वरूप यह अज्ञान समष्टि प्रपञ्च ब्रह्माण्ड का कारण है । इसी कारण इसको कारण शरीर कहते हैं । आनन्द अधिक होने से साक्षी सर्वज्ञ कहते हैं । ईश्वर नाना प्रकार की मायाओं के द्वारा नाना रूप धारण करता है इन्द्रजालवत् व्यापक समान

स्थित है व्यापक माया है व्याप्य ब्रह्म है। व्याप्य-व्यापक भाव से ईश्वर वर्तमान है। वही ईश्वर वर्तमान से जीव भोग रहा है। ईश्वर सर्वज्ञ है जीव अल्पज्ञ। ईश्वर सतोगुण से बोला जाता है। जीव रजोगुण-तमोगुण अधिक होने से अल्पज्ञ हैं।

प्राज्ञ इत्युच्यते —

अर्थ—उस अज्ञान की व्यष्टि अपकृष्ट उपाधि है, इसी से व्यष्टि में तमोगुण मिश्रित सत्वगुण प्रधान है। इसी व्यष्टि भूत अज्ञान से उपहित चैतन्य प्राज्ञ शब्द से कहा जाता है। इसी व्यष्टि भूत अज्ञानोपहित चैतन्य में अल्पज्ञत्व और अनीश्वरत्व आदि गुण रहते हैं। इसी कारण व्यष्टि भूत अज्ञानोपहित चैतन्य अलग-अलग एक-एक अज्ञान का प्रकाशक है उपाधि से उपहित होने से अल्पज्ञ प्रकाशक कहते हैं। यही व्यष्टि भूत अज्ञान अहंकार का कारण है। इसी कारण इसको कारण शरीर कहते हैं। आनन्द के अधिक होने से तथा कोश की तरह आच्छादक होने से आनन्द मय कोश और इन्द्रियों के ऊपर स्थान होने से सुषुप्ति कहलाता है। स्थूल को सूक्ष्म प्रपञ्च का लय स्थान कहते हैं। आनन्द भुक् चेतो मुखः प्राज्ञः। ईश्वर और प्राज्ञ दोनों सुषुप्ति काल में चैतन्य द्वारा प्रकाशित होकर अति सूक्ष्म अज्ञान वृत्ति के द्वारा आनन्द भोगते हैं। प्राज्ञ चैतन्य के प्रकाश द्वारा सुख को भोगता है।

प्राज्ञ माया है, चैतन्य ब्रह्म है। माया लेकर शब्द होता है। इसी प्रकार अज्ञान समष्टि सहित अज्ञान का भी कोई भेद नहीं है। तथा यही सम्पूर्ण चैतन्य, ईश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सम्पूर्ण का कारण, जगत की उत्पत्ति, प्रलय का हेतु है। जैसे वन और वन में स्थित आकाश, वृक्ष और वृक्ष में स्थित आकाश, जलाशय-जलाशय प्रतिबिम्बित आकाश और जल प्रतिबिम्बित आकाश का आश्रय जो अपरिच्छिन्न आकाश उसको महाकाश कहते हैं। उसी प्रकार समष्टि और व्यष्टि भूत अज्ञान और

अज्ञानोपहित चैतन्यादि का आधार जो अपरिच्छिन्न चैतन्य उसको तुरीय ब्रह्म चैतन्य कहते हैं और उसी को आत्मा और विज्ञेय भी कहते हैं ।

अग्नि लोहा एक रूप है बिलग रूप नहीं होता है ।

अग्नि शान्ति जब भई आप में भ्रान्ति रूप तब हटता है ॥

जैसे अग्नि से तपाये हुये लोहे के सहित अभिन्न रूप होने से लोहा जलता है उसी प्रकार वाक्य का प्रयोग होता है । किन्तु यही अग्नि ही अभिन्न रूप उक्त वाक्य का वाच्य और लोहे से भिन्न रूप इस वाक्य का लक्ष्य होता है । इसी प्रकार यह तुरीय ब्रह्म चैतन्य है तथा तुरिया कहने में आती है । तुरिया तक माया है ब्रह्म तुरीयातीत है ।

श्रुति :—तादृश सामर्थ्यम् ।

उपरोक्त अज्ञान की दो शक्ति है—

(१) आवरण शक्ति (२) विक्षेप शक्ति ।

आवरण शक्ति :—जैसे मनुष्यों के नयनों का आवरण करने वाला अल्प स्थान में रहने वाला मेघ मंडल सूर्य का आच्छादक कहा जाता है उसी प्रकार सविवेकी मनुष्य के ज्ञान का आवरण करने वाला तथा सर्व व्यापी परब्रह्म का आच्छादक रूप प्रसिद्ध अज्ञान की शक्ति को आवरण शक्ति कहते हैं । उसी प्रकार भ्रम वश रज्जु में रज्जु का ज्ञान न होकर सर्प ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार अज्ञान की आवरण शक्ति द्वारा आच्छादित आत्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है और मैं कर्त्ता, भोक्ता सुखी, दुखी हूँ इत्यादि । मोह जाल से व्याप्त संसार का बोध होता है ।

(२) विक्षेप शक्ति :—जैसे रज्जु विषयक अज्ञान अपनी शक्ति द्वारा रज्जु में सर्प का सहज प्रदर्शन होता है इसी प्रकार से यह शक्ति अज्ञानाश्रित आत्मा में आकाशादि पंचभूत का भ्रम प्रदर्शन करती है यही विक्षेप शक्ति कही जाती है, यही अज्ञान की विक्षेप शक्ति ब्रह्म से लेकर समस्त जगत पर्यन्त को उत्पन्न करती है ।

श्रुति :—चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तम्

जैसे ऊन् नाम कीट तथा मकड़ी स्वकृत प्रधान रूप से जाले का निमित्त कारण और शरीर प्रधान रूप से उसी तन्तु का उपादान कारण होती है इसी प्रकार से आवरण और विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान द्वारा समावृत चैतन्य स्वयं प्रधान रूप से प्रपंच विश्व का निमित्त कारण और उपाधि रूप अज्ञान से उपादान कारण होता है और तमोगुण प्रधान विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से आच्छादित चैतन्य से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार क्रम से प्रपंच विश्व उत्पन्न हुआ है और आकाशादि में जड़ता का आधिक्य होने से उनका कारण तमोगुण प्रधान मालूम होता है उन आकाशादि को उत्पत्ति के अनन्तर उनके कारण गुणों के तारतम्य के अनुसार सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इनकी उत्पत्ति होती है एवं पूर्वोक्त अवस्था को प्राप्त होकर आकाशादि सूक्ष्म भूत, प्रपंच मात्रा और प्रपंचीकृत कहे जाते हैं, इन्हीं सूक्ष्म भूत से सूक्ष्म और स्थूल शरीर उत्पन्न होते हैं। अब सूक्ष्म शरीर दिखलाते हैं।

सत्रह अवयव युक्त लिङ्ग शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रिय (नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा, पाँच कर्मेन्द्रिय (हस्त, पाद, गुदा, लिङ्ग, वाक्)

पाँच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान)

मन और बुद्धि यह सत्रह अवयव कहलाते हैं यह ज्ञानेन्द्रिय आकाशादि के सात्त्विक अंश से उत्पन्न होती है। तेज के सात्त्विक अंश से नेत्र, आकाश के सात्त्विक अंश से कर्ण, पृथ्वी के सात्त्विक अंश से नासिका, जल के सात्त्विक अंश से जिह्वा, वायु के सात्त्विक अंश से त्वचा उत्पन्न होती है। निश्चयात्मक अन्तःकरण की वृत्ति का नाम बुद्धि है। संकल्प विकल्पात्मक अन्तःकरण की वृत्ति का नाम मन है।

श्रुति :—अनयोरेव चित्ताहंकारयोरन्तर्भावः।

चित्त और अहंकार यह दोनों बुद्धि और मन के अन्तर्गत दो प्रकार की वृत्ति है। अनुसंधात्मक अन्तःकरण की वृत्ति का नाम चित्त है। और अभिमान सहित जो चित्त की वृत्ति है उसका नाम अहंकार है। बुद्धि और मन यह दोनों मिल कर आकाशादि पंचभूत के सात्विक अंश से उत्पन्न होते हैं। इसी कारण इनका पंचभूत के सात्विक अंश से उत्पन्न होना अनुमान किया जाता है।

श्रुति :— इयं बुद्धिः ज्ञानेन्द्रियैः सहिता सती विज्ञानमयकोशो भवति ।

सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं ! यही मैं कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी हूँ। इत्यादि अभिमान युक्त इस लोक में रहने वाला और परलोक में जाने वाला इस प्रकार व्यवहार से इसको जीव कहते हैं।

श्रुति :— मनस्तु कर्मेन्द्रियैः सहितं मनोमयकोशो भवति ।

पाँच कर्मेन्द्रियों के सहित मन ही मनोमय कोश होता है। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पाँचों अवयवों का नाम कर्मेन्द्रिय है। यही पाँच कर्मेन्द्रिय आकाशादि पंच-महाभूतों के राजस अंश से उत्पन्न होती है। आकाश के रजोभाग से वाक्, वायु के रजोभाग से पाणि, जल के रजोभाग से पाद, तेज के रजोभाग से पायु, पृथ्वी के रजोभाग से उपस्थ उत्पन्न होते हैं।

श्रुति—प्राणापानौ तथा व्यानमुदानच समानकम् ।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इनको पंच वायु कहते हैं। ऊपर को चलने वाला नासिका के अग्र भाग में रहने वाले वायु का नाम प्राण वायु है। नीचे को चलने वाला, गुदा स्थान में रहने वाले वायु को अपान वायु कहते हैं। सब नाड़ियों में चलने वाला सब शरीर में रहने वाले वायु को व्यान कहते हैं। ऊपर को चलने वाले कण्ठ स्थान में रहने वाले वायु को उदान कहते हैं। भोजन किये हुये अन्न और पान किये जलादि के समीकरण करने वाले वायु को समान वायु कहते हैं।

परिपाक क्रिया द्वारा भोजन की हुई वस्तु का रुधिर, वीर्य और पुरी-
षादि करने का नाम समीकरण है ।

श्रुति:—नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाख्याः ।

पाँच वायु के मध्य से पाँच वायु का प्रमाण और है क्रिया करने से ।

(१) नाग (२) कूर्म (३) कृकल (४) देवदत्त (५) धनञ्जय ।

(१) अङ्गिरण कराने वाले वायु को नाग कहते हैं ।

(२) जिस वायु से नेत्र मीचा जाय वह कूर्म कहलाता है ।

(३) जिस वायु से क्षुधा लगे उसे कृकल कहते हैं ।

(४) जम्हाई करने वाले वायु को देवदत्त कहते हैं ।

(५) जिस वायु से पुष्टि होती है उसे धनञ्जय कहते हैं ।

यह प्राणादि पंच वायु मिले हुये आकाशादि पंचभूत के राजस
अंश से उत्पन्न होते हैं ।

श्रुति:—इदं प्राणादिपंचकर्मेन्द्रियसहितं सत् प्राणमयकोशो भवति ।

पूर्व कहे हुये प्राणादि पंचवायु और कर्मेन्द्रियों को मिला कर प्राण-
मय कोश होता है । गमनागमन इत्यादि क्रिया प्राणादि पंचवायु का
स्वभाव है । इसी कारण यह पंचवायु सम्पूर्ण राजस अंश का कार्य
मालूम होता है । पूर्व कहे हुये कोशों के मध्य में ज्ञान शक्ति युक्त
विज्ञानमय कोश कर्त्ता है । इच्छा शक्ति युक्त मनोमय कोश करण है ।
क्रिया शक्ति युक्त प्राणमय कोश कार्य है । इस प्रकार तीनों कोशों का
विभाग वर्णन करते हैं । ये तीनों कोश मिल कर कोश समष्टि का
सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं और कहीं श्रुति में प्रमाण देता है कि जैसे वन
और वृक्ष, तालाव और जल का समष्टि है उसी प्रकार समस्त सूक्ष्म
शरीर एक रूप से शरीर समष्टि है । इसी प्रकार जैसे वृक्ष और जल
वन और तालाव का व्यष्टि है वैसे अनेक रूप द्वारा शरीर समष्टि है ।

इसी सूक्ष्म शरीर का समष्टि रूप उपाधि से उपहित चैतन्य को सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ कहा जाता है। इसी कारण यही चैतन्य वस्त्र में स्थित सूत्र की तरह सब में परित्याप्त तथा ज्ञान, इच्छा और क्रिया शक्ति विशिष्ट अप्रंचीकृत पंचभूत का अभिमानी होता है।

श्रुति—अस्यैषासमष्टिः स्थूलप्रपञ्चापेक्षया सूक्ष्मत्वात् ।

हिरण्यगर्भ का उपाधि स्वरूप इसी स्थूल शरीर के समष्टि स्थूल प्रपञ्च से सूक्ष्म होता है इसी कारण इसको सूक्ष्म शरीर और कोशत्रय कहते हैं तथा जाग्रत अवस्था का वासनात्मक हेतु स्वप्न और स्थूल प्रपञ्च का लय स्थान कहा जाता है। इसी स्थूल शरीर के व्यष्टि रूप उपाधि से उपहित चैतन्य को तैजस कहते हैं। इसी कारण तेजोमय अन्तःकरण उसकी उपाधि है।

श्रुतिः—विज्ञानमयादिकोशत्रयं जाग्रद्वासनाभयत्वात्स्वप्नः ।

यह सूक्ष्म शरीर वाचना मय है इसी को स्वप्न और स्थूल शरीर का लय स्थान कहते हैं। सुषुप्ति अवस्था में यही हिरण्यगर्भ और तैजस दोनों सूक्ष्म मन की वृत्ति द्वारा सूक्ष्म विषय का अनुभव करते हैं। इसी विषय में श्रुति का प्रमाण है कि तैजस ही सूक्ष्म वस्तु का उपभोग करता है।

श्रुतिः—एवं सूक्ष्मशरीरोत्पत्तिः ।

जैसे वन और वृक्ष का कोई भेद नहीं है। वन में जो आकाश भी वृक्ष का आकाश तथा जलाशय और जल का कोई भेद में नहीं जैसे जलगत प्रतिबिम्बित आकाश की और जलाशय के प्रतिबिम्बित आकाश की भिन्नता नहीं है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की व्यष्टि और समष्टि की तथा तदुपहित हिरण्यगर्भ और तैजस की परस्पर विभिन्नता नहीं है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति है।

श्रुतिः—स्थूलभूतानिपंचीकृतानि ।

इकट्ठे हुये आकाशादि पंचभूतों को स्थूल-भूत कहते हैं। इसी आकाशादि पंचभूतों के मध्य में से प्रत्येक भूत को समान भाग करने से दस भाग होते हैं। तदन्तर उन्हीं दस भागों के प्रथम पंचम भाग को प्रत्येक पंचभूत के समान चार भाग करके उन्हीं सम्पूर्ण जैसे प्रत्येक चार भागों के द्वितीय अर्ध को छोड़ कर और चार भूत के द्वितीयार्द्ध भाग के सहित मिलाने को पंचीकरण कहते हैं। पंचभूत के पंचीकरण के समय आकाश में शब्द, गुण, वायु में शब्द और स्पर्श अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस, पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध गुण प्रकाशित होते हैं।

श्रुति:— एतेभ्यः पंचीकृतेभ्योः भूतेभ्यः ।

पंचीकृत इन पंचभूतों से ही ब्रह्माण्ड और चार प्रकार के स्थूल-शरीर और शरीरों के भोजन, अन्न, पानादि उत्पन्न होते हैं।

स्थूल शरीर के चार भेद हैं—(१) जरायुज (२) अण्डज (३) स्वेदज (४) उद्भिज ।

जरायुज से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि। अण्डे से उत्पन्न होने वाले अण्डज यथा पक्षी, सर्पादि। पसीने से उत्पन्न होने वाले जीवों को स्वेदज यथा मसक, चीलर आदि। पृथ्वी को भेद कर उत्पन्न होने वाले वेल वृक्ष इत्यादि को उद्भिज कहते हैं।

पाषाण, वृक्ष, तृण, धान्य, भूसी ये सब नाश होने पर मृत्तिका स्वरूप हो जाते हैं वैसे देह, इन्द्रिय, प्राण, मन आदि जितने दृश्य पदार्थ हैं सो सब नाश होने पर परमात्मा स्वरूप ही को प्राप्त होते हैं।

श्रुति:—व्यापक ब्रह्मरूपाः ।

स्वामी शंकराचार्य महाराज शिष्य को उपदेश करते हैं कि हे भगवन् व्यापक परमात्मा का मत् चित् आनन्द रूप है उनका रूप है व्यापक सत्ता से तो कुल एक रस है; परन्तु कहीं पर तीनों स्पष्ट लक्षित

होते हैं और कहीं पर सत् मात्र कहीं पर चित मात्र कहीं पर आनन्द मात्र लक्षित हैं अर्थात् जहाँ पर अन्तःकरण होने से सूक्ष्म ही आनन्द और चेतन का रूप लक्षित होता है और जहाँ पर केवल जड़ ही जड़ है अर्थात् काष्ठ, पाषाण, धातु इत्यादि वहाँ पर सद्मात्र लक्षित होता है। हे सौम्य ! सत् मात्र तो सब में समान तथा चिद् और आनन्द ये अन्तःकरण ही द्वारा जाने जाते हैं।

शिष्य—हे भगवन् ! माया का क्या स्वरूप है ?

गुरु—हे सौम्य ! माया का स्वरूप असत् जड़ दुःख है अर्थात् मिथ्या है। जितने इसके कार्य हैं वह सब जड़, विनाशी, मिथ्या हैं।

श्रुति—एतद्व्यप्युपहितं चैतन्यविश्वइत्युच्यते।

अब व्यष्टि रूप स्थूल शरीर से जो उपहित चैतन्य है उसको विश्व शब्द से कहते हैं। इसी कारण यह चैतन्य सूक्ष्म शरीर के अभिमान को बिना छोड़े ही स्थूल शरीर में प्रवेश करता है। पूर्वोक्त व्यष्टि को स्थूल शरीर कहा है। इसके अन्न विकार स्वरूप को अन्नमय कोश कहते हैं और वही व्यष्टि स्थूल भोग का स्थान है। इस कारण जाग्रत शब्द से कहा जाता है।

श्रुति—जागरितस्थानोवहिःप्रज्ञः।

जाग्रत काल में विश्व और वैश्वानर ये दोनों दिशा, वायु, सूर्य, वरुण और अश्वनिकुमार इनके द्वारा प्रेरणा किये हुये कर्ण, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों करके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन विषयों का अनुभव होता है। इसी प्रकार अग्नि, इन्द्र, विष्णु, यम और ब्रह्मा इनके द्वारा प्रेरणा किये हुये वाणी, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियों करके क्रमशः वाक्य, ग्रहण, चलना, त्याग और आनन्द इन पाँच बाह्य विषयों का अनुभव करते हैं। चन्द्रमा

ह्मा, शिव और विष्णु इन चार इन्द्रियों करके क्रमशः संशय, निश्चय,

अहंकार और चित्त इन चार स्थूल विषयों का अनुभव करते हैं । जाग्रत अवस्था में विश्व और वैश्वानर बाह्य स्थूल विषयों का अनुभव करते हैं ।

श्रुति — एवंपंचीकृतपंचभूतेभ्यः स्थूलप्रपञ्चोत्पत्तिः ।

जैसे वन और वृक्ष में वनावच्छिन्न आकाश और वृक्षावाच्छिन्न आकाश में तथा जलाशय में और जल में और तालाव प्रतिविम्बित आकाश और जल प्रतिविम्बित आकाश में कुछ भेद नहीं है । वैसे स्थूल शरीर की समष्टि गत उपहित वैश्वानर और स्थूल शरीर की व्यष्टि गत उपहित विश्व का भी कुछ भेद नहीं । इस प्रकार इकट्ठे किये हुये पंचभूत से स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है ।

श्रुति — एतेषां स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरप्रपञ्चानां समष्टिरेको महान् प्रपञ्चो भवति ।

जिस प्रकार अलग-अलग वनों की समष्टि से एक बड़ा वन हो जाता है और अलग-अलग तालावों की समष्टि से एक बड़ा तालाव हो जाता है । इसी प्रकार स्थूल, कारण, सूक्ष्म शरीर के प्रपञ्च की समष्टि से एक बड़ा प्रपञ्च हो जाता है जैसे सम्पूर्ण वनावच्छिन्न आकाश और यावद जलाशय गत प्रतिविम्बित आकाश एक ही है । उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रपञ्चावाच्छिन्न वैश्वानर, विश्व, हिरण्यगर्भ, तैजस और प्राज्ञ और ईश्वर यह सब एक ही चैतन्य है ।

श्रुति — याभ्यां महाप्रपञ्चतदुपहितचैतन्याभ्यां तप्तायः पिण्डवद् विविक्तं सत् अनुपहितं चैतन्यं ।

जैसे जलते हुये लोहे से अभिन्न अग्नि “अयोदहति” इस वाक्य का वाच्य होना है उसी प्रकार महत् प्रञ्चावच्छिन्न चैतन्य इस प्रपञ्च से अभिन्न होकर “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” इस वाक्य का वाच्य होता है और पृथक् रूप होकर इस महाकाव्य का लक्ष्य होता है ।

श्रुति—इदानीं प्रत्यागात्मनि इदमिदमयमरोपयतीति विशेष उच्यते ।

अति अज्ञानी पुरुष पुत्र को आत्मा कहते हैं और इस श्रुति का प्रमाण देते हैं “आत्मावैजायते पुत्रः” आत्मा ही पुत्र रूप होकर जन्म लेता है परन्तु युक्ति भी आश्चर्य ढंग की देते हैं । कहते हैं अपने में जिस प्रकार प्रेम होता है पुत्र में भी उसी प्रकार प्रेम का अनुभव होता है । इस कारण पुत्र ही आत्मा है । इस विषय में और भी अनुभव है जैसे पुत्र के पुष्ट होने पर मैं पुष्ट हो गया और पुत्र के नष्ट होने पर मैं नष्ट हो गया । इस प्रकार ज्ञान होता है । इस कारण पुत्र ही आत्मा है और चारवाक् मतावलम्बी तो स्थूल शरीर को आत्मा कहते हैं और इस श्रुति का प्रमाण भी देते हैं अन्नमय रस के विकार से युक्त यह पुरुष ही आत्मा है और यह युक्ति देते हैं कि सब पुरुष पुत्र का परित्याग करके जलते हुये घर में से अपने बचने का उपाय करते हैं और इस विषय में अनुभव भी है ऐसा कहते हैं क्योंकि मैं पुष्ट हूँ, मैं दुर्बल हूँ ऐसा ज्ञान सर्व साधारण को होता है । इस कारण स्थूल शरीर ही आत्मा है दूसरे चारवाक् मतावलम्बी तो इन्द्रियों के समूह को आत्मा कहते हैं । और इस श्रुति का प्रमाण देते हैं इन्द्रियों का समूह ब्रह्मा के समीप जाता है तब इन्द्रियों के होने से शरीर कुछ व्यापक नहीं कर सकता इस कारण इन्द्रिय समूह ही आत्मा है और यह युक्ति देते हैं मैं अन्धा हूँ, मैं बधिर हूँ इस कारण ज्ञान सब को होता है । इससे इन्द्रिय गण ही आत्मा है ।

अपर चार्वाक—अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः ।

दूसरे लोग प्राण को आत्मा कहते हैं, इस श्रुति का प्रमाण देते हैं प्राणमय अन्तरात्मा शरीरादि से भिन्न है । और मत के स्थापन अर्थ ऐसी युक्ति देते हैं कि जिस समय शरीर में प्राण नहीं रहता तब इन्द्रियों के समूह से कोई क्रिया नहीं हो सकती । इससे प्राण ही आत्मा है और यह युक्ति दिखाते हैं मैं भूखा हूँ, मैं प्यासा हूँ । इस प्रकार पंडित से पामर तक को अनुभव होता है । इस कारण प्राण ही आत्मा है । और कुछ

लोग मन को आत्मा कहते हैं और इस श्रुति का प्रमाण देते हैं मनोमय अन्तरात्मा शरीर, इन्द्रिय और प्राण से भिन्न है। इस कारण मन ही आत्मा है और अपने मत और प्रधानता के रक्षार्थ यह युक्ति देते हैं। जिस समय मन स्वप्नावस्था में होता है तब प्राणादि का अभाव होता है और मुझको यह संकल्प है और विकल्प है। इस प्रकार अनुभव भी सभी को होता है इस प्रकार मन ही आत्मा है।

बौद्धस्तु—अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयाः ।

बौद्ध मतावलम्बी बुद्धि को आत्मा कहते हैं और इस श्रुति का प्रमाण देते हैं। विज्ञानमय अन्तरात्मा शरीर, प्राण और मन इनसे भिन्न है और यह युक्ति देते हैं। जिस समय कर्त्ता का अभाव होता है तब ही कारण की शक्ति का अभाव होता है। ऐसी प्रतीति है और बुद्धि के अभाव होने पर इन्द्रियों की शक्ति का अभाव हो जाता है। मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ। इस प्रकार अनुभव भी सभी को होता है। इस कारण बुद्धि ही आत्मा मिद्ध होती है।

प्रभाकरतार्किकोक्त—अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः ।

मीमांसक और नैयायिक अज्ञान को ही आत्मा कहते हैं और इस श्रुति का प्रमाण देते हैं। अन्तरात्मा शरीरादि से भिन्न है और आनन्दमय है। युक्ति प्रमाण देते हैं सुषुप्ति अवस्था में अज्ञान में बुद्धि आदि का लय होता है। मैं मूर्ख हूँ। मैं जानी हूँ। इस प्रकार का अनुभव भी जीवात्मा को होता है। इस कारण अज्ञान ही आत्मा है।

महस्तु—प्रधानघनएवानन्दमय आत्मा ।

अज्ञान समष्टि द्वारा उपहित चैतन्य अर्थात् ईश्वर चैतन्य को ही आत्मा कहते हैं। इस श्रुति का प्रमाण देते हैं। आत्मा ही अज्ञान, घन तथा आनन्दमय है युक्ति प्रमाण देते हैं कि सुषुप्ति काल में सबके लीन होने पर भी अज्ञानोपहित चैतन्य का प्रकाश रहता है और मैं अपने को

नहीं जानता है । ऐसा अनुभव होता है । इस कारण अज्ञानोपहित चैतन्य ही आत्मा है ।

अब कोई बौद्ध मतावलम्बी शून्य को ही आत्मा कहते हैं और युक्ति देते हैं कि सुषुप्ति काल में बुद्धि आदि का अभाव होता है और सुषुप्ति से उठ कर पुरुष को ऐसा ज्ञान होता है कि सुषुप्ति में मेरा अभाव हो गया । इस अनुभव के कारण शून्य ही आत्मा है ।

श्रुति—एतेषां पुत्रादीनां शून्यपर्यन्तानामनात्मत्वमुच्यते ।

ठीक तो यह है कि पुत्रादि से लेकर शून्य पर्यन्त किसी को भी आत्मा नहीं कहा जाता क्योंकि पुत्रादिकों के अनात्मत्व स्पष्ट मालूम होता है । जो पुत्रादि को आत्मा कहें वे मूढ़ हैं उनका पहिले दिखाया हुआ श्रुति प्रमाण युक्ति और अनुभव प्रमाण सब उत्तरोत्तर दिखाये हुये प्रमाण युक्ति और अनुमान द्वारा सबका खण्डन हो जाता है । इस कारण पूर्वोक्त मतावलम्बियों का ठीक मत नहीं है ।

आत्मा-स्थूल, इन्द्रियगण, प्राण, मन, कर्त्ता नहीं है । केवल चैतन्य-मय सत्य स्वरूप है पुत्रादि से शून्य तक जड़ के चैतन्य के भासक हेतु घटादि की तरह अनित्य है अर्थात् हेत्वाभास है । जानियों को मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार दृढ़ अनुभव होता है ।

जो पुत्रादि से शून्य पर्यन्त का प्रकाशक है और जो नित्य शुद्ध, सर्वज्ञ मुक्त, सत् स्वरूप प्रत्येक चैतन्य है वही आत्मा है । ऐसा वेदान्त शास्त्र के जानने वालों का अनुभव है । इस प्रकार वस्तु में अवस्तु का अध्यारोप स्वरूप अध्यारोप न्याय विशेष से दिखाया ।

श्रुति—अपवादोनाम रज्जुर्विर्वत्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् ।

रज्जु में सर्प का भ्रम होकर जिस समय वह भ्रम नष्ट हो जाता है तब केवल रज्जु का ज्ञान रह जाता है । इसी प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म में अवस्तु रूप अज्ञानादि जड़ पदार्थ का भ्रम होकर जिस समय उस भ्रम

का नाश हो जाता है तब केवल ब्रह्म मात्र अवस्थित रह जाता है । क्योंकि यह रूप ज्ञान का विवर्त है । जो स्वरूप को विकृत करके कार्य का उत्पादन करे वह विकारी व परिणामी उपादान कारण कहलाता है । जैसे दूध दधि का विकारी व परिणामी उपादान कारण है और जो कारण स्वरूप का विकार के बिना ही कार्य का उत्पादन करे वह उसको विवर्त कारण कहते हैं । जैसे रज्जु में सर्प ।

श्रुति — सर्व एतेषां कारणरूपपञ्चीकृतभूतमात्रं भवति ।

भ्रम के नष्ट होने पर जिस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रपञ्च अपने-अपने कारण में लीन हो कर ब्रह्म रूप में अवस्थित होता है उसी प्रकार दिखाते हैं स्थूल भोग का स्थान स्वरूप चार प्रकार का स्थूल शरीर और भोग्य अन्न वनादि इन सबको आधार स्वरूप भूलोक आदि चौदह लोक और इन्हीं सबके वर्तमान स्थान स्वरूप ब्रह्माण्ड यह सम्पूर्ण पञ्चीकृत पञ्च महाभूत मात्र है । शब्द स्पर्शादि विषयों सहित यह सम्पूर्ण पञ्चीकृत पञ्चभूत और सूक्ष्म शरीर यह सब अपने-अपने कारण रूप अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत मात्र हैं । सत्त्व आदि गुण युक्त यह सम्पूर्ण अपञ्चीकृत पञ्च महाभूत उत्पत्ति उलटे क्रम से अर्थात् पृथ्वी जल से व जल अग्नि से, अग्नि वायु से, वायु आकाश से, आकाश अज्ञान से इस प्रकार कारण रूप अज्ञानोपहित कारण रूप चैतन्य मात्र है । यही अज्ञान और अज्ञानोपहित चैतन्य रूप ईश्वर को पहिले सब ही उसका आधार भूत अनुपहित चैतन्य रूप तुरीय ब्रह्म है । पूर्वोक्त अवधारोप और अपवाद में कहीं हुई रीति के द्वारा तत् और त्वं इन दोनों पदार्थों का शोधन (संगति) ठोक होता है । अज्ञानादि की समष्टि अर्थात् अज्ञान सूक्ष्म और स्थूल शरीर की समष्टि तदुपहित चैतन्य अर्थात् ईश्वर हिरण्यगर्भ और विराट् चैतन्य और अनुपहित चैतन्य, तुरीय ब्रह्म चैतन्य यह तीन प्रकार के पदार्थ तपे हुये लोहे की तरह अतिरिक्त रूप “तत्” इस पद के वाच्य होते हैं और अज्ञानादि की समष्टि रूप उपाधि और तदुपहित ईश्वरीय

चैतन्य का आधारभूत तुरीय ब्रह्म चैतन्य “तत्” पद का लक्ष्यार्थ होता है ।

श्रुति—अज्ञानादिव्यष्टिः तदुपहिताल्पज्ञत्वादिविशिष्टचैतन्यः ।

अज्ञानादि की व्यष्टि अर्थात् अज्ञान, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर तदुपहित चैतन्य अर्थात् प्रागर्तज्ञ और विश्व तथा अनुपहित चैतन्य अर्थात् तुरीय ब्रह्म चैतन्य यह तीनों तबे हुये लोहे पिंड की तरह अभिन्न “रूपत्वं” पद के वाच्य होते हैं । तथा अज्ञानादि की व्यष्टि और प्राग आदि चैतन्य का आधार स्वरूप अनुपहित आनन्द रूप तुरीय ब्रह्म चैतन्य “त्व” इस पद का लक्ष्यार्थ है ।

श्रुति—इदं तत्त्वमसि वाक्यं सम्बन्धत्रयेण अखण्डार्थबोधकं भवतिः । तत्त्वमसि यह वाक्य तीन प्रकार के सम्बन्धों के द्वारा अखण्ड ब्रह्मचैतन्य का बोधक होता है सम्बन्ध त्रय कहलाते हैं—(१) समानाधिकरण (२) विशेषण भाव (३) लक्ष्य लक्षण भाव । “तत् और त्वं” इन दोनों पदों को एक अधिकरण में अवस्थित होने पर समानाधिकरण सम्बन्ध होता है । दोनों पदों का परस्पर विशेष विशेषण रूप सम्बन्ध को विशेष विशेषण भाव कहते हैं । प्रत्यगात्मा लक्ष्य और दोनों पद लक्षण इस प्रकार के सम्बन्ध को लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध कहते हैं ।

श्रुति—समानाधिकरणसम्बन्धस्तावत् यथा सोऽयं देवदत्तः ।

जैसे सोऽयं देवदत्तः, सः शब्द से पहले लिखी हुई वस्तु का बोध होता है और अयम् शब्द से वर्तमान दृष्टि का बोध होता है । इसी प्रकार “तत्त्वमसि” इस वाक्य में भी अप्रत्यक्ष चैतन्य का बोध “तत्” शब्द है और प्रत्यक्ष चैतन्य का बोधक “त्वं” शब्द है । इन शब्दार्थों का एक चैतन्यमय ब्रह्म में तात्पर्य है यही समानाधिकरण सम्बन्ध है ।

श्रुति—विशेषणविशेष्यभावसम्बन्धस्तत्रैव वाक्ये सशब्दार्थतत्काल-विशिष्टदत्तस्यम् ।

इसी प्रकार "तत्त्वमसि" इस वाक्य में भी 'तत्' पद का अर्थ अप्रत्यक्ष चैतन्य और 'त्वं' पद का अर्थ प्रत्यक्ष चैतन्य है। इन दोनों पदों के अर्थों का परस्पर विशेष विशेषण सम्बन्ध है, क्योंकि दोनों पदों के अर्थों का एक वस्तु में अभिन्न रूप से तात्पर्य माना जाता है।

श्रुति—लक्ष्यलक्षणभावसम्बन्धस्तु ।

"तत्त्वमसि" इस वाक्य में "तत्" पद का अर्थ अप्रत्यक्षत्व और "त्वं" पद का अर्थ प्रत्यक्षत्व है। इन परस्पर विरुद्ध दोनों अर्थों का त्याग करके केवल एक अविरुद्ध चैतन्य लक्ष्य होता है और 'तत्, त्वं' पद लक्षण होते हैं। इसी को शास्त्रकार भाग लक्षण सम्बन्ध कहते हैं।

श्रुति—अत्रतु गङ्गायां घोषः प्रतिवसतीत्यजहन्लक्षणोच्यते ।

शब्द का मुख्य अर्थ परित्याग करके अन्य अर्थ को स्वीकार करना लक्षण अर्थात् जहत्स्वार्थ लक्षण होती है। जिस प्रकार तत्त्वमसि इस वाक्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष इन दोनों के एक स्वरूप वाक्यार्थ में कोई विरोध नहीं है केवल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष को प्रतिपादक अंश विरोध है अतः शब्दार्थ को परित्याग करके लक्ष्यार्थ स्वीकार नहीं करते। इस कारण 'तत्त्वमसि' वाक्य में अजहत्स्वार्थ लक्षण सङ्गत नहीं होती है।

श्रुति—अहं ब्रह्मास्मि ।

"तत्त्वमसि" इस वाक्य द्वारा अखण्ड चैतन्य का बोध हो जाता है। उस समय में नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत् स्वरूप परमानन्द अद्वितीय ब्रह्म है। इस प्रकार अखण्ड अन्तःकरण वृत्ति होती है। वह अन्तःकरण वृत्ति चैतन्य प्रतिबिम्बित होती है। तब वह चित्त वृत्ति चैतन्य द्वारा प्रकाशित होकर प्रत्यगात्मा (जीव) ब्रह्म का अभेद ज्ञान और अभिन्न परब्रह्म विषयक अज्ञान का नाश कर देती है। जैसे वस्त्र के तनु का नाश होने से वस्त्र नष्ट हो जाना है, वैसे सम्पूर्ण संसार के कारण अज्ञान का नाश

होने से तदन्तर्गत अखण्डाकार अन्तःकरण की वृत्ति भी नष्ट हो जाती है ।

श्रुति—तत्र वृत्तौ प्रतिबिम्बितं चैतन्यमपि यथा प्रदीपप्रभा ।

जैसे दीप प्रभा सूर्य प्रभा से असमर्थ हो कर अपने आप निष्प्रभ हो जाती है, उसी प्रकार अन्तःकरण वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य स्वप्रकाशस्थ रूप ब्रह्म चैतन्य के प्रकाश करने को समर्थ नहीं होता है और स्वप्रकाश ब्रह्म चैतन्य से स्वयं अभिमूत हो जाता है । जैसे दर्पण के नाश होने पर मुख प्रतिबिम्ब मुख ही रहता है, उसी प्रकार उपाधि भूत अन्तःकरण वृत्ति के न होने पर स्वप्रकाश परब्रह्म मात्र ही रहता है । इस प्रकार ज्ञानियों को 'मैं ब्रह्म हूँ' अनुभव होता है ।

श्रुति—जडपदार्थाकाराकारितचित्तवृत्तिविशेषोऽस्ति ।

पूर्वोक्त अनुभव प्रकार सिद्ध होने पर ब्रह्म मन करके धारण किया जाता है और ब्रह्म मन से धारण नहीं किया जाता है । इन परस्पर विरुद्ध दोनों श्रुतियों का विरोध भी दूर हो गया, क्योंकि मनोवृत्ति द्वारा ब्रह्म विषयक अज्ञान का नाश होता है किन्तु अन्तःकरण वृत्ति में प्रतिबिम्बित अज्ञान का नाश होता है । किन्तु अन्तःकरण वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य परब्रह्म का प्रकाश नहीं कर सकता; क्योंकि वह सब का परम प्रकाशक है ।

अर्थात् अन्तःकरण वृत्ति और तद्वत् प्रतिबिम्बित चैतन्य यह दोनों ही घट को प्राप्त होते हैं परन्तु अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा घट के अज्ञान का विनाश होता है और प्रतिबिम्बित चैतन्य द्वारा घट प्रकाशित होता है । जैसे दीपक की प्रभा अन्धकार में रखे हुये घट पटादि को प्राप्त हो कर घट पटादि गत अन्धकार का विनाश करके उनका प्रकाश करती है उसी प्रकार अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा घटादि का अज्ञान नष्ट होता है और अन्तःकरण प्रतिबिम्बित चैतन्य द्वारा घटादि का प्रकाश होता है ।

श्रुति—एवंभूतस्वस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कारपर्यन्तम् ।

परमात्मा चैतन्य के साक्षात्कार होने तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि, अनुष्ठान यह आवश्यक होते हैं। इस कारण अब श्रवणादि के लक्षण दिखलाते हैं छः प्रकार के लिङ्गों के द्वारा अद्वितीय ब्रह्म में सम्पूर्ण वेदान्त के तात्पर्य का अवधारण करना श्रवण कहलाता है।

छः प्रकार के लिङ्ग हैं—(१) उपक्रमोपसंहार (२) अभ्यास (३) अपूर्वता (४) फल (५) अर्थवाद (६) उपपत्ति।

श्रुति—एकमेवाद्वितीयं ।

जिस प्रकरण में जो वस्तु प्रतिपादन करने योग्य हो उस प्रकरण में आदि से लेकर अन्त पर्यन्त उसी वस्तु का प्रतिपादन करना उपक्रमोपसंहार कहलाता है। जैसा कि छान्दोग्य के षष्ठ अध्याय के अंत आदि में “एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म” अद्वितीय ब्रह्म ही एक है। अन्त में यह आत्मा ही जगन्मय है। बारम्बार प्रतिपादन करना अभ्यास कहा जाता है।

जिस प्रकरण में जो वस्तु प्रतिपादन करने योग्य हो उस वस्तु के प्रमाण से अतिरिक्त प्रमाण के विषय को छोड़ कर उसी वस्तु के प्रतिपादन करने को अपूर्वतय कहते हैं। जिस प्रकरण में जो वस्तु प्रतिपादन करने योग्य हो उस प्रकरण में उसी वस्तु का अथवा उस वस्तु के अनुष्ठान का श्रवण करना फल कहलाता है।

जिस प्रकरण में जो वस्तु प्रतिपादन करने योग्य हो उस वस्तु की प्रशंसा का नाम अर्थवाद है। गुरु शिष्य से कहते हैं, हे शिष्य ! तूने हमसे जिसका प्रश्न किया है, उसको सुन ! नहीं सुने हुये पदार्थ का श्रवण करना व भूले हुये पदार्थ का स्मरण करना न जाने हुये पदार्थ का जानना इस प्रकार उस अद्वितीय ब्रह्म वस्तु की प्रशंसा कही है।

जिस प्रकरण में जो वस्तु प्रतिपादन करने योग्य हो उस प्रकरण में उसी वस्तु के प्रतिपादन की युक्ति का नाम उपपत्ति है।

श्रुति—मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनीयेदान्तार्थानुगुणयुक्तिपूर्वकम-
चरतचित्तनम् ।

मनन का लक्षण—वेदान्त के अनुकूल युक्ति द्वारा चिरकाल से
श्रवण किये हुये अद्वितीय ब्रह्म वस्तु की चिन्तना का नाम मनन है ।

निदिध्यासन—तत्त्व ज्ञान के विरोधी देहादि जड़ पदार्थ ज्ञान को
त्याग कर अद्वितीय ब्रह्म वस्तु के अनुकूल ज्ञान के प्रवाह (आधिक्य)
को निदिध्यासना कहते हैं ।

समाधि दो प्रकार का है—(१) सविकल्प (२) निर्विकल्प ।

ज्ञाता ज्ञान और जानने योग्य वस्तु इस तीन पदार्थों का पृथक्-पृथक्
ज्ञान होने पर भी अद्वितीय ब्रह्म वस्तु में अखण्डाकार चित्त की वृत्ति का
होना सविकल्प समाधि कहलाता है । जैसे मृत्तिका की हस्थी से हस्थी
का ज्ञान होने पर भी यह मृत्तिका है । ऐसा ज्ञान होता है । इस विषय
में प्रमाण भी कहा है—सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी, सर्वोत्कृष्ट, स्वप्रकाश-
स्वरूप, जन्म-मृत्यु रहित, निर्लिप्त और सर्वदा युक्त स्वभाव जो अद्वितीय
ब्रह्म है सो मैं हूँ ।

श्रुति—निर्विकल्पवस्तुज्ञातृ जानादिभेदलक्ष्याद्वितीयवस्तुनि ।

ज्ञाता-ज्ञान और जानने योग्य वस्तु तीन पदार्थों का भेद ज्ञान का
अभाव होने पर अद्वितीय ब्रह्म वस्तु में अखण्डाकार चित्त की वृत्ति होना
निर्विकल्पक समाधि कहलाता है । इस समाधि के समय जिस प्रकार
जल में मिले हुये लवण के लवणत्व ज्ञान का अभाव होने पर केवल जल
का ज्ञान होता है उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्माकार चित्त वृत्ति के ज्ञान
की सत्ता का अभाव होने पर भी ब्रह्म वस्तु मात्र ज्ञान रहता है
अर्थात् अखण्ड ब्रह्म में चित्तवृत्ति के लीन होने पर और भिन्न रूप कुछ
ज्ञान नहीं होता है । अखण्ड ब्रह्ममय ज्ञान ही होता है । इसी कारण
सुषुप्ति अवस्था से निर्विकल्प समाधि का भेद कोई भेद नहीं । इस प्रकार
आशंका भी नहीं होती क्योंकि सुषुप्ति अवस्था से और निर्विकल्पक

समाधि अवस्था में वृत्ति ज्ञान के अभाव अंश में समानता होने पर भी वृत्ति की सत्ता और सत्ता द्वारा समाधि और सुषुप्ति का भेद है ।

श्रुति - यमनियमआसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये सम्पूर्ण निर्विकल्पक समाधि के अंग हैं । अहिंसा, सत्य, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन सब के धारण का नाम यम है । पवित्रता, संतोष, तपस्या, अध्ययन और ईश्वर प्राणिधान इन सबको नियम कहते हैं । हस्तपादादि के संस्थान विशेष जो स्वास्तिक पात्र इत्यादि हैं उन्हें आसन कहते हैं । रेचक, पूरक, कुम्भक, रूप प्राण वायु के निग्रह करने के उपाय का नाम प्राणायाम है । शब्दादि विषयों श्रवणादि इन्द्रियों का हटाना प्रत्याहार कहलाता है । अद्वितीय ब्रह्म वस्तु में अन्तःकरण के अभिनिवेश का नाम धारणा है । अद्वितीय ब्रह्म वस्तु में चित्त वृत्ति के प्रवाह का नाम ध्यान है । पूर्वोक्त सविकल्पक समाधि का नाम समाधि है ।

पूर्वोक्त यम आदि अङ्ग युक्त निर्विकल्पक समाधि के चार विघ्न होते हैं ।

(१) लय—अखण्ड ब्रह्म वस्तु के अवलम्बन करने में असमर्थ चित्त वृत्ति को जो निद्रा है उसका नाम लय है ।

(२) विक्षेप—अखण्ड ब्रह्म वस्तु के अवलम्बन करने में असमर्थ जो अन्तःकरण वृत्ति का जो अन्य वस्तु का अवलम्बन है उसको विक्षेप कहते हैं ।

(३) कषाय—लय और विक्षेप के न होने पर रागादि वासना से अन्तःकरण स्तब्ध हो जाता है तब अखण्ड ब्रह्म वस्तु के अवलम्बन की असमर्थता का नाम कषाय है ।

(४) रसास्वादन—निर्विकल्पक समाधि के आरम्भ के समय सविकल्पक रसास्वादन को रसास्वादन कहते हैं ।

पूर्वोक्त चार प्रकारों के विघ्नों से रहित होकर वायु रहित स्थान में स्थित दीपक की तरह अखण्ड हुआ केवल अखण्ड चैतन्य मात्र की चिन्ता में तत्पर होता है । उस समय के चित्त को निर्विकल्पक समाधि कहते हैं । श्रुति के प्रमाण से जाना जाता है । लय रूप विघ्न उपस्थित होने पर अन्तःकरण में उद्वोचक को उत्पन्न करता है । अन्तःकरण के विक्षेप रूप विघ्न के (उच्चाटन) तिरस्कृत होने पर उसको शान्त करे । कषाय रूप विघ्न युक्त हुये चित्त को जान कर निवृत्ति रखे । जिस समय अखण्ड वस्तु में प्रणिधान हो उस समय अन्तःकरण को चलायमान न करे । उस समय कोई सविकल्पक आनन्द आस्वादन करे और प्रज्ञा द्वारा निःसंग हो जाय । इस विषय में स्मृति का प्रमाण भी है । जिस प्रकार दीपक वायु रहित स्थान में स्थित होकर निश्चल रहता है उसी प्रकार प्रणिधान होने पर अन्तःकरण निश्चल होता है ।

श्रुति—जीवनमुक्तो नाम स्वस्वरूपपाखण्डे ब्रह्मणि साक्षात्कृते ।

जो पुरुष अखण्ड चैतन्य स्वरूप ब्रह्म ज्ञान होने के अनन्तर अज्ञान का नाश होने से सर्वव्यापी चैतन्य स्वरूप ब्रह्म वा साक्षात्कार करके अज्ञान और अज्ञान के कार्य इकट्ठे किये हुये पाप-पुण्य संशय और भ्रमादि को दूर करके संसार बंधन से विमुक्त होकर ब्रह्म निष्ठ होता है उसको जीवनमुक्त कहते हैं ।

यह जीवनमुक्त पुरुष शरीर-यात्रा के निर्वाह के अर्थ, इच्छा, अनिच्छा, परेच्छा इन तीन प्रकार के प्रारब्ध कर्मों से उत्पन्न हुये सुख-दुःख का अनुभव करता हुआ साक्षी चैतन्य रूप बुद्धि आदि का प्रकाशक होता हुआ प्रारब्ध कर्मों के भोग के अन्त में सच्चिदानन्द रूप परब्रह्म में प्राणों के लीन होने पर अज्ञान और अज्ञान के कार्य स्वरूप पूर्व संसार

के विनाश हेतु परम कैवल्य रूप सच्चिदानन्दमय अद्वैत पूर्ण ब्रह्म में लीन हो जाते हैं ।

उपनिषद तत्त्वानुसंधान ।

ईश्वर माया जीव का, करै निरूपण सार ।

सत्गुरु की चरणन कृपा, भवसागर हो पार ॥

ईश्वर, जीव और माया तीनों के पहचानने के परम अधिकारी के प्रयोजन को शास्त्रकारों ने प्रमाण कहा है और अपने स्वरूप के पहचानने से तीनों जाना जाता है कि संसार का रचना कारण ब्रह्म से प्रकट हो कर किया जाता है । कारण ब्रह्म से तीनों का लयकार करने के लिये प्रथम अष्टाङ्ग योग अधिकारी का प्रमाण देते हैं कि सम, दम, उपपत्ति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा इन छः गुणों से संयुक्त तीव्र वैराग्य से ईश्वर जीव और माया तीनों का लयकार करके परमस्वरूप का बोध करे कि जिसके जानने से सन्यास का प्रमाण वाल उपनिषद के चतुर्थ खण्ड में याज्ञवल्क्य मुनि ने जनक जी से कहा कि जिसके भास से ईश्वर, जीव और माया वर्तमान हो कर कर्ता, कर्म, त्रिया तीनों का सत् दिखा करके उसी में लयकार होता है । वही निर्गुणब्रह्म अपना आत्म स्वरूप है और पंचम खण्ड में अत्रि ऋषि ने याज्ञवल्क्य मुनि से इसी आत्मा के जानने का परामर्श या प्रमाण दिया है कि प्रकाश स्वरूप भासमान जानने योग्य अधिकारी का उचित है । अरुणोत्पनिषद में अरुणी ने प्रजापति ब्रह्मा से परमहंस सन्यास का प्रमाण दिया है कि जाग्रत, स्वप्न, मृषुप्ति तीनों का साक्षी तुरीया चारों अवस्थाओं जिससे भासमान है वही ब्रह्म स्वरूप अन्तर्धामी अन्तःकरण में स्फुरण अनुभव करता साक्षात् वर्तमान है । उसी के जानने का परमहंस सन्यास प्रमाण है । परमहंस उपनिषद में नारद मुनि प्रजापति ब्रह्मा से परमहंस सन्यास का प्रमाण कहा है कि जानने योग्य का जानना यही योग सन्यास है । योग अनेक प्रकार का कहा है । वरं वही योग मुख्य है ।

ब्रह्म उपनिषद में किसी ऋषि ने कहा है, बिना प्रश्नोत्तर वेद भगवान् ने आप ही स्पष्ट करके कहा है इतने मुनि को कि संवर्त, उद्दालक, श्वेतकेतु, दुर्वासा, भृगु, निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय अपने सर्वज्ञ आत्मा को वेद भगवान् के वाक्य से जान सके और संसार में विचरते रहे परन्तु कोई उनको संसार में जानता नहीं था; क्योंकि अनेक प्रकार का रूप धारण करते रहे ।

श्लोक—येन सतं नचासंनश्रुतं न बहु श्रुतं ।

न सुवर्तं न दुवर्तं वेद कच्चित्त सः ब्राह्मणः ॥

भावार्थ—दत्तात्रेय संहिता में कहा गया है कि सब तरह का भेष सब तरह से अभेष संत महात्मा का रहता है । एक काल विषे दत्तात्रेय नर्वदा नदी के किनारे जल में खड़े वस्त्र पहने यौवन अवस्था धारण किये स्त्री में दत्तात्रेय को कोई नहीं मिला । भाव यह है कि अहंकार का त्याग करके माया को साथ लेकर संसार में उपदेश दे रहे हैं कि अहंकार रूप मद त्याग करो, क्योंकि अहंकार संसार रूप है । आवागमन का कारण है । इसके त्याग करने से मुक्ति का स्थान प्राप्त होता है ।

मुक्ति का जानने वाला परम अधिकारी बुद्धि की विकलता चित्त की चञ्चलता को योगाभ्यास करके त्याग करता है । उसके त्याग से अहंकार का त्याग आपसे आप हो जाता है और योगाभ्यास का विधान समाधि है । समाधि से मन का लयकार होता है । मन का लयकार भय से परमपद की प्राप्ति होती है । परमपद की प्राप्ति कोई योगी महात्मा को, जिसने मन को जीता है उस की समाधि का विधान श्रुति में प्रमाण है कि :—

श्लोक—देहाभिमानं गलिते, विज्ञाते परमात्मनि ।

यत्र यत्र मनोयाति, तत्र तत्र समाधियः ॥

नाम रूप का परित्याग ब्रह्म रूप समाधि में सर्वदा स्थित ब्रह्म ज्ञानी

महात्मा का स्वभाव है। इस प्रकार का ज्ञान बिना वैराग्य नहीं हो सकता। वैराग्य परम बोध का स्थान है।

स्वामी शंकराचार्य महाराज का वाक्य है कि.....

वैराग्य बोधो पुरुषस्य पक्षि पक्षो विज्ञानिहि विचक्षणस्वम् ।

विमुक्ति सौधाग्रक्तताधि रोहणं ताम्यां विना नान्यतरेण सिद्धमिति ॥

हे शिष्य वैराग्य और बोध इन दोनों को पक्षी के पक्ष के समान पुरुष का पक्ष जानो। जिस पुरुष में वैराग्य व बोध ये दोनों पक्ष विद्यमान हैं वही पुरुष मोक्ष रूप कोण का अर्द्ध भाग की लता पर जा सकता है। एक पक्ष के रहने से अर्थात् केवल वैराग्य अथवा केवल बोध होने से मुक्ति रूप लता को नहीं पा सकता।

वैराग्य की उत्पत्ति देहाभिमान का त्याग करने से होती है। गर्भ उपनिषद में प्रमाण देते हैं। गर्भ के अन्दर इस शरीर की उत्पत्ति इस प्रकार होती है। जिस दिन माता पिता का सम्भोग होता है उस दिन रज वीर्य दोनों एक हो कर मथन होता है। सातवें दिन बुल्ला प्रकट होता है। आधे मास में पिण्ड बनता है। एक मास में पिण्ड कटित हो जाता है। दूसरे मास में सिर तीसरे मास में पाँच चौथे मास में हाथ व छाती पाँचवें मास में पेट, छठवें मास में मुख, नासिका तथा सम्पूर्ण शरीर की तैयारी हो जाती है। सातवें मास में वायु के साथ जीव ब्रह्माण्ड फोड़ कर प्रवेश कर जाता है। वायु वासना और चेतना का प्रतिविम्ब तीनों का मिलाप हो कर जीव की संज्ञा दी जाती है। इसका प्रमाण आगे विस्तार पूर्वक देंगे। आठवें मास में जीव गुप्त हो जाता है अर्थात् अज्ञान रूपी शरीर में ढक जाता है। किसी बात की याद नहीं होती। नवें मास में चेतना शक्ति जीव की प्रकट होती है तब जीव अनेक जन्मों की याद करता है।

(५२)

श्लोक जातश्चैव भृतश्चैव, जन्मश्चैव पुनः पुनः ।

यन्माया परिजनस्यार्थे, कृतं [कर्म शुभा शुभम् ॥

अनेक जाति, अनेक जन्म, अनेक शुभाशुभ कर्म किया है उसका फल गर्भ वास पाया नरक कुण्ड में जेर में बाँधा उसका कोई सहायक नहीं एक भगवत् की याद कर रहा है ।

श्लोक—यदि योन्यः प्रमुच्यहं, तत्प्रयद्देमहेश्वरम् ।

अशुभर्क्षं करतारं, फल मुक्ती प्रदायकम् ॥

जेर के अन्दर जीव ईश्वर की स्तुति करता है, हे महेश्वर ! आप हमको बाहर जब करोगे तब आप की याद करोगे । अनेक प्रकार के कलामकरवा भगवत् गर्भ से बाहर करता है । तब विश्वभरणी वायु माया करके युक्त बाहर आते ही भूल जाता है । भूलना यही अज्ञानमय संसार का कारण है । इसी से पंचभूतमय उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन शरीर हुये । जन्म, मरण, परलोक, स्वर्गलोक क्या है ? इत्यादि शास्त्र का कहना है जन्म संसार का जानना है कि यह कैसे हुआ विचार करना चाहिये । गर्भवास में कौन हमारा रक्षक था वही अन्तर्यामी हमारे शरीर में कैसे वर्तमान है । प्राणवायु का चलाने वाला उससे भिन्न है कि अभिन्न है । शास्त्र से कैसे जाना जा सकता है । उसका प्रमाण देते हैं कि कारण ब्रह्म में तिल भर अज्ञान का करना निर्गुण ब्रह्म है । तिल भर अज्ञान संसार का कारण है । इसी अज्ञान से पंचभूत प्रकट हुआ है । आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी इन्हीं के संचार से पञ्चीकृत हुआ है । वायु हर समय शरीर में चलती है । शब्द हर समय होता है । दस प्रकार के नाद की दस ध्वनिः—समुद्र, बादल, भेरी, झरनों से उत्पन्न ध्वनि के सामान, मृदङ्ग, घंटे, नगारे, किङ्किणी, वंशी, वीणा भ्रमर बाजा उसके नाम निषाद, रिषभ, गांधार, षड्ज, मध्यम, धैवत, पंचम जिसको सुनने की नारद मुनि ने इच्छा किया है । धुनि सौर के मध्य में शोर शब्द होता है । छः राग छत्तीस रागिनी, दस प्रकार का बाजा

नारद मुनि ने सुना है । इसी को अनहद शब्द कहते हैं । इस शरीर में रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य सात धातुएँ हैं । अष्ट कोटि रोम हैं । जिह्वा के मध्य में एक सरोवर जिह्वा के दोनों बगल कुण्ड है । जिह्वा के संचार से जल दोनों ओर निकलता है । वीर्य तीन ठिकाने रहता है—(१) नेत्र (२) कण्ठ (३) हृदय । अब नाड़ी का प्रमाण देते हैं । प्रथम सुषुम्ना नाड़ी प्रकट हुई । जिसमें १०० नाड़ी निकलती है एक-एक से १०० सौ प्रकट हुई । वहनर हजार नाड़ी निकली है कोई बहत्तर कोटि दस सहस्र की गणना करते हैं ।

चित्त वृत्ति की संज्ञा के वर्णन होने पर योग क्रिया का वर्णन विस्तार से किया जायेगा । हृदय कमल से प्राण चलता है । नासिका से १२ अंगुल बाहर जाता है । मस्तक के मध्य में चन्द्र मण्डल है, वहाँ वायु ठहरती है । आगम शास्त्र में कहा है—

श्लोक—सर्वेषाम् पिञ्जत् नामचित्तिपृति चन्द्रमा ।

अथो भोगरविप्रोतो, मृत्युकाले विपर्ययात् ॥

ऊपर चन्द्रमा नीचे सूर्य रहते हैं । जब मृत्यु का समय आता है, तब ऊपर नीचे से बदल जाते हैं गीता में श्री कृष्ण भगवान् का वाक्य है कि—

श्लोक—“जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥”

कौरवीतकी उपनिषद में मरण का चिह्न दिन में प्रमाण दिया है कि सूर्य सित फटा क्षिप्त का काल अपनी परछाई न देखना । मुख, नासिका, कान, जिह्वा न देखना सब की सूरत उतर जाती है । सूर्य का तेज ठंडा धुंआकार देखाता है । दिशा का रास्ता सिकुड़ जाता है । नासिका मुख से गंध निकालती है । मरण के बहुत से चिह्न हैं जो वर्णन करने से अधिक विस्तार होगा । याद रखने की बात है कि मरण अवश्य होगा । मरण के याद रखने से भगवत की याद होती है । मरण का भय अधिकारी को अवश्य करना चाहिये । अब स्वप्न विचार का प्रमाण देते

है कि प्रथम पहर में जो स्वप्न होता है साल भर में सत्य होता है। दूसरे पहर में देखा हुआ स्वप्न छः मास में सत्य होता है। तीसरे पहर में देखे तो चार घड़ी का अलग-अलग विचार करे। प्रथम घड़ी में देखे तो ३ मास में दूसरे में डेढ़ मास में तीसरे में देखे तो एक मास में और चौथे में देखे तो पंद्रह दिन में सत्य होता है। चौथे पहर में घंटा-घंटा का विचार करना चाहिये। पहले घंटा में देखे तो आठ दिन में दूसरे में देखे तो तीन दिन में तीसरे में देखे तो दिन भर में चौथे में देखे तो तुरंत सत्य होता है। इसका प्रभाव नाद उपनिषद् में कहा है कि आत्म योग जिसका सिद्ध हुआ है उसी का भविष्य विचार सिद्ध होता है। बिना आत्मा के सिद्ध हुये नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य जिसका सिद्ध हुआ है उस योगी का आत्म योग भी सिद्ध हो गया है। उस योगी का प्रमाण गीता में कहा गया है कि—

“यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥

एक आत्मा को वह योगी जानता है और कुछ नहीं जानता। उस योगी का अद्भुत प्रभाव है। याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—

श्लोक—चद्यत्पस्यत्तितत्सर्वं पत्येदात्मानं मातमनि ।

प्रत्याहारः सच प्रोतो, योग विम्दिमहात्मनि ॥

आत्माकार देखना संसार है नहीं तब योग सिद्धि का प्रमाण है नहीं, तो योग में कवाई है यही प्रत्याकार भी है। आत्मा का चिन्तन करना यही तर्क है। आत्माकार सर्व वस्तु में देखना यही भजन है। अनर्थ का त्याग करना यही मन का लय करना है। विजाती वृत्ति का त्याग मजाती वृत्ति का परवाह करना यही ध्यान है। आत्मा में स्थिति ध्याता, ध्यान, ध्येय इन तीनों का अनादर करना यही समाधि है। चित्त की वृत्ति तद्वा-कार होना। यही समाधि का स्वरूप है। प्राण के साथ जो हंस शब्द होता है उनको जानना यही योग है, यही ज्ञान है। गुरु के उपदेशानुसार प्राण के साथ सदैव लगे रहना यही हंस मंत्र है। ज्ञान, शक्ति, क्रिया

शक्ति, प्राण शक्ति यह तीनों शक्ति के साथ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था में जीव आत्मा का व्यापार होता है। ब्रह्म लोक जाने का मार्ग मूलाधार के ऊपर नाभि चक्र है उसके ऊपर हृदय कमल है सुषुम्ना नाड़ी का। उसमें सम्बद्ध यही ब्रह्म लोक का द्वार है। जोगी जन वहाँ पर मन को रोक कर हंस का साक्षी रूप अपने को जान कर शरीर से भिन्न अपने को बिहार कराता है। हंस मंत्र का जप करता योगी जैसे अभ्यास प्रबल होता है वैसे-वैसे योगी का तेज सूर्य समान प्रबल होता है। जगत का अनुभव अपने को जानता है ऐसा योगी जीवन मुक्त है और विदेह मुक्त भी है क्योंकि अपने को भिन्न भी जानता है।

अब योग क्रिया का वर्णन करते हैं।

गुदा लिङ्गी के ऊपर एक दो अंगुल का केन्द्र है। केन्द्र उसी से नाभि चक्र निकला उससे नाल कमल निकला है। इसी कमल पर जीव पाप-पुण्य रूपी डोर से फँसा है। नाभि चक्र के पास आधार चक्र है उसी पर कुण्डली नामी नागिन रहती है जो कारण ब्रह्म से प्रकट हुई है। पंच तत्त्व अंतःकरण यावत् सिरजना शरीर की इसी से हुई है। अन्तःकरण से शब्द का उच्चारण इसी का स्वभाव है ब्रह्म लोक में जीव के न जा सकने का कारण यही है। जीव हर मास में ब्रह्म लोक जाने को चाहता है। कर्म रूमी तागे से जीव को बांधे चौरासी लक्ष योनि के अन्दर नचा रही है। परन्तु सुषुम्ना नाड़ी दसवां द्वार रोके बैठी है तथा अनेक लोकों में जाने नहीं देती। योग शास्त्र में कहा गया है कि प्राणायाम करने से प्राण अग्नि के समान होता है। तब कुण्डली नाड़ी का शरीर गरम से व्याकुल होता है। तब वह स्थान छोड़ कर बाहर चली जाती है तब सुषुम्ना नाड़ी खुली होती है। तब जीव परम पद का अधिकारी होता है। सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में १३ नाड़ियाँ और हैं—(१) सरस्वती (२) कुहवारण (३) पयस्वनी (४) पूषा (५) पंच तत्त्वनी (६) संखिनी (७) गांधारी (८) हरित जिह्वा (९) विश्वोदरा (१०) अलम्बुखा (११) इंगला (१२) पिंगला (१३) सुषुम्ना। सुषुम्ना छोड़ कर शेष सर्व

नाड़ियों में कुंडलिनी भ्रमण करती है। अब नाड़ी का प्रवेश जहाँ-जहाँ हुआ है उसका प्रमाण देते हैं। सुषुम्ना दसवें द्वार को गई है। इंगला पिंगला दोनों नासिका को गई हैं। गांधारी और पूषा दोनों नेत्र में सखिनी और यस्वनी दोनों कान में शब्द का व्यापार करती हैं। सरस्वती जिह्वा में रस का स्वाद कहती है हरित जिह्वा व पयस्विनी दोनों पांव को चलाती हैं। अलम्बुखा व कुहू-वाण दोनों गुदा लिङ्ग का व्यापार करती हैं। इसी प्रकार का व्यवहार चींटी से ब्रह्मा तक सब का हो रहा है। जन्म मरण भी सबका एक समान है। बिना ईश्वर के भजन संसार से निकलना नहीं हो सकता है। हंस उपनिषद में प्रमाण दिया है कि योगाभ्यास से अक्षर निकाला गया है। इस प्रकार शरीर के अन्दर छः चक्र हैं—(१) आधार चक्र (२) स्वाधिष्ठान चक्र (३) मणि पूरक चक्र (४) अनहद चक्र (५) विशुद्ध चक्र (६) आज्ञा चक्र।

आधार चक्र वायु संस्थान के दो अंगुल ऊपर चलता है। चार दल वाला है वं, शं, पं, स चार अक्षर निकला है। आधार चक्र के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र कुण्डलिनी सांपिन के पूँछ से आधार युक्त है। उपस्थ के डेकान पर छः दल वाला है। यं रं लं वं भं मं अक्षर निकले हैं। स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर नाभि स्थान के विषे मणि पूरक चक्र है। दस दल वाला है और डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं दस अक्षर निकले हैं। विष्णु देवता करके युक्त है। मणिपूरक चक्र के ऊपर हृदय है। वहाँ अनहद चक्र द्वादस दल वाला है कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं ये अक्षर निकले हैं। वहाँ पर शंकर जी का वास है। अनहद चक्र के ऊपर कण्ठ है तहाँ पर विशुद्ध चक्र षोडस दल वाला अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः अक्षर निकले हैं विशुद्ध चक्र के ऊपर दोनों भौंह के मध्य में आज्ञा चक्र दो दल वाला है हं, क्षं निकला है। हं, स अक्षर जीव सदा हर श्वांस में उच्चारण करता है हंस मंत्र जीव ब्रह्म की एकता करने वाला है। २१६०६ श्वांस रात दिन में जीव उच्चारण करता बाहर भीतर गमन करता है। श्वांस की यह

संख्या जीव की पूंजी है। इसमें कम खर्चा करना आयु की वृद्धि करना और अधिक व्यय करना आयु की न्यूनता होगी।

“बैठे बारह चलत अठारह सोवत की छत्तीस।

विषय भोग में चलै बहत्तर, क्यों जीवे जगदीश ॥”

जब जीव अपने स्वरूप को जानता है तब हंस शब्द सुनता है। जब अपने को शब्द से भिन्न जानता है तब जीवत्व संज्ञा पारे की भांति उड़ जाती है अर्थात् नहीं है ब्रह्म में एकता हो जाती है। वेद में जीव को पक्षी रूप कहा जाता है कि ज्ञान और वैराग्य दोनों पर ओंकार सिर मूल शक्ति की जो त्रिया शक्ति बिन्दु है, वही जीव का हृदय है। महादेव जी के समान सूर्य चन्द्रमा अग्नि तीन नेत्र हैं। महादेव जी व पारवती जी दोनों पाँव हैं। वेद का आधार पूँछ है त्व पद का वाचक जीव तत् पद का वाचक ईश्वर दोनों की एकता ब्रह्म है ऐसा वेद में प्रमाण है और यही ब्रह्म निरुपाधिक में निर्गुण ब्रह्म, सोपाधिक सगुण ब्रह्म अधिकारी के समझाने के लिये महात्मा, आचार्यों का कहना है कि एक कला खड़ा करके कारण ब्रह्म, ईश्वर, माया जीव चार की कल्पना किया है। निरंकार ब्रह्म का सब में तेज दिखा कर अन्त में बोध के स्थान में सब का लयकार किया है। जीव में तेज दिखलाया है कि हृदय में कमल आठ दल वाला उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मन, बुद्धि, चित्त आठों दलों में जीव का तेज वर्तमान है। जब तक क्रिया शरीर में होती है। जीव की तेज से होती है, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों की अपेक्षा से तुरीया चारों के प्रबन्ध से समाधि का कर्त्ता तथा करने वाला कारण ब्रह्म को जानता है क्योंकि समाधि कारण लेकर है। तुरीयातीत के जानने वाला असम्प्रज्ञात समाधि में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान तीनों से भिन्न जानता है जानने में बुद्धि की स्थिति यही समाधि का मूल है। सोपाधिक समाधि का कर्त्ता समाधि में दस प्रकार का बाजा सुनता है—(१) चिरमिनाद (२) चिणिनाद (३)

घंटा नाद (४) संखनाद (५) तंत्रीनाद (६) तालनाद (७) वेणुनाद (८) भेरी नाद (९) मृदङ्गनाद (१०) मेघनाद । उसमें मन को लय करना मुख्य सिद्धान्त है । निरकार ब्रह्म के जानने वाला अपने आप में चेतन कला का जानता अनुभव गम्य समाधि में स्थित है ।

अब छुरिका उपनिषद् का सारांश वर्णित किया जाता है । पहले सगुण ब्रह्म का जानने वाला कहीं एकान्त स्थान पर जाकर अकेला गुरु शिक्षानुसार मन एकाग्र करके सुषुम्ना नाड़ी द्वारा कारण ब्रह्म के साथ एकता करके हृदय कमल के पास जो छः चक्र हैं उसका छेदन करे । उसके बाद जोग साधने से तथा जोग क्रिया का त्याग करके निर्गुण ब्रह्म का अभ्यास करे । सुषुम्ना नाड़ी द्वारा कारण ब्रह्म का जानना है । ब्रह्म विद्या निर्गुण ब्रह्म के निकटवर्ती है । ब्रह्म विद्या की प्राप्ति शास्त्र गुरु और अपना अन्तःकरण तीनों की एकता करके होती है । अन्तःकरण की शुद्धि योग क्रिया से होती है ।

परमहंस सन्यास का वैराग्य मुख्य कारण है वैराग्य की उत्पत्ति । इस गर्भ के विचार, जन्म मरण का विचार, नाना प्रकार की योनि से, नाना प्रकार के आहार से, नाना प्रकार के दुख से, इन सबके विचार करने से होती है । महात्मा का संग करना सबसे परम उत्तम है कि जिसके संग से कर्म, उपासना, ज्ञान काण्ड तीनों का प्रभाव जाना जाता है । शास्त्र में बहुत प्रकार से कर्म योग उपासना लिखा है । मुख्य दो प्रकार की उपासना है—(१) विराट् हिरण्यगर्भ आदि यावत् विभूति है सबमें ब्रह्म रूप देखना ये सगुण उपासना है । निर्गुण उपासना ब्रह्म विद्या के बोध परमगुरु से जान कर उसी में चित्त को लगाये रहना मुख्य उपासना यही है कि ओंकार के साथ बहुत उपनिषद् में अर्थ व सिर योग शिक्षा पूर्वतापनीय, उत्तर तापनीय, माण्डूक्य, आत्मबोध दोनों नारायण, अमृतनाद, अमृत बिन्दु सब उपनिषदों में ओंकार के साथ उपासना करने का विधान हर प्रकार का कहा है, परंच उपासना का

मुख्य वैराग्य है। वैराग्य से ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान से सर्वज्ञता का बोध होता है। मंत्र का प्रभाव लेकर ब्रह्म के जानने के लिये अरुन्धती न्याय करके ब्रह्म विद्या का लक्ष प्रलक्ष का बोध परम अधिकारी के बोध कराने के लिये कहा है। वेदान्त का कल्पना ब्रह्मर्षि, महात्मा ब्रह्म के नाम, रूप, गुण, क्रिया, विशेष सामान, कारण ब्रह्म इत्यादि विशेष करके बोध के लिये कहा है। चार प्रकार का सन्यास है—(१) कुटीचक (२) बहूदक (३) हंस (४) परम हंस। उसमें तीन सन्यास संस्कार सहित रहता है क्योंकि कर्म उपासना संस्कार के अन्तरवर्ती हैं।

कुटीचक :—कुछ जीविका का प्रबन्ध लेकर गाँव के बाहर अपने अन्न का ग्रहण करता है।

बहूदक :—गाँव के बाहर एकान्त में शरीर रक्षा निमित्त स्थान बनाकर भिक्षा जो अनाश्रुतचाहै घर का या गाँव का मिल जाय एक समान समझ कर अन्न का ग्रहण करना।

हंस :—जैसे दूध जीर पानिहंस दूध पीकर पानी छोड़ देता है ऐसे पानी स्वरूप संसार को छोड़ कर अपने आत्मा में विहार करता है।

परमहंस :—सन्यास का विधान यह है कि जिस दिन संकल्प का बोध हो उसी दिन सूत्र शिखा का परित्याग करके देव रात्रि में इस मंत्र का जाप करे। ॐ त्रिशंको वेदानु वचनं ” यही सन्यास का मूल मंत्र है। अर्थ इसका ॐ शब्द निरंकार का बोधक है त्रिशंको शब्द ब्रह्म ईश्वर जीव अमेदक है। वेदानुवचनं वेद का वचन सत्य है। सत् का वाचक गुरु जिसके वचन से सच्चिदानन्द आत्मा जाना जाता है। उस गुरु की पूजा मन वाणी से नहीं होती आत्मा के ध्यान से ब्रह्म रूप जानना ही पूजा है और व्यवहार पूजा इस भाँति है। व्यास पूजा, कृष्ण पूजा, आचार्य पूजा, गुरु पूजा, आत्म पूजा, वासुदेव पूजा, शंकर पूजा, प्रद्युम्न पूजा, अनिरुद्ध पूजा, विश्व पूजा इन सबको ब्रह्म रूप जान कर भावना बनवाने के लिये आपाढ़ की पूर्णमासी को पूजा अवश्य करना

चाहिये । अपने आत्मा का अभ्यास जैसा पंचदशी में कहा है वैसा कर ।

तत्कथं चित्तं मन्योतं तत्प्रबोधनम् ।

एतदेत परं त्वं च ब्रह्माभ्यास विदुर बुधाः ॥

ब्रह्म के अभ्यास करने वाले को वज्र सुचिका उपनिषद में कहा

जन्मना जायते शूद्रो ज्ञातं बंधाद्विजः स्मृतः ।

वेदाभ्यासाभ्दवेद्विप्रो ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः ॥

ब्रह्म का जानना यही दण्ड का धरणा है काठ का नहीं ।

स्वामी शंकराचार्य का वाक्य है—

देहस्य मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः ।

अविद्या हृदय ग्रन्थि मोक्षो मोक्षो यतस्ततः ॥

देह का मोक्ष होना मोक्ष नहीं है और दण्ड कमण्डल का त्याग करना भी मोक्ष नहीं है किन्तु जिससे अज्ञान रूप जो हृदय की ग्रन्थि है । उस ग्रन्थि का मोक्ष होना ही मोक्ष है ।

ज्ञान दण्ड का प्रमाण परम हंस उपनिषद में कहा है कि जीव ब्रह्म के एकता करने वाला चारों अवस्था से अपने को भिन्न जानता है । और ब्रह्म उपनिषद् में चारों अवस्था का प्रमाण दिया है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया चारों में यथा कर्म से नाभी, कण्ठ, हृदय, मूर्धा चार स्थान में प्रकाश तेज रूप करके विराजमान प्रत्यक्ष अपने का इस शरीर में सब बातों का जानता है । नेत्र में तेज विश्व करके कण्ठ में तेज तेजस्थ करके हृदय में प्राण करके मूर्धा में निरकेवल हृदय करके रहता है । तुरीयातीत तीनों अवस्था के साक्षी का नाम है द्वैत में प्रपंच का निर्णय करने से माया का प्रभाव जान कर त्याग करने के बाद अद्वैत में कल्पना नहीं रहता । द्वैत की कल्पना माया जीव लेकर किया है जैसे रंजु में सर्प तैसे माया करके जीव अपने स्वरूप में नाना प्रकार का कल्पना कर लेता है । तिसका आत्मा जानता भिन्न है वही जानना जीव का स्वरूप है पंच जानता नहीं

प्रपंच के प्रबन्ध से । शब्द प्रपंच के जानने वाला आत्मा निर्विकार स्थित साक्षी रूपसे जीव माया का प्रपंच जानना है । जानना आत्मा का साक्षी लेकर है । वास्तव में निरंकार रूप है । शब्द की गम्य नहीं है । यही ब्रह्म उपनिषद का प्रमाण है । अब ब्रह्म विन्दु उपनिषद का प्रमाण देते हैं ।

मन दो प्रकार है—शुद्ध और अशुद्ध, अशुद्ध मन से विषय राग की प्रवृत्ति करके जीव को चौरासी लक्ष योनि का भटकना जन्म, मरण गर्भवास, इत्यादि उपद्रव करने वाला है और शुद्ध मन से मोक्ष व परलोक का प्राप्त करने वाला है अधिकारी को अवश्य शुद्ध मन करना योग्य है । बिना शुद्ध मन से आत्म ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती । वही शुद्ध मन अमन रूप हो जाता है । तब चित्त की वृत्ति ब्रह्माकार रूप होती है । ब्रह्माकार वृत्ति का प्रमाण श्रुति में कहा है कि जानने के अन्दर वृत्ति कारक अवृत्ति कारक जैसे समुद्र में लहर तथा तरंग का भाव अभाव रहता है वैसे उसी में प्रकट होती है और उसी में लयकार होती है इससे जाना जाता है कि जानने के अन्दर सब कुछ है । इस बात की सत्यता समाधि और सुषुप्ति में प्रमाण दिया जाता है कि जब तक समाधि रहतो है तब तक वृत्ति का अभाव रहता है । परन्तु समाधि के उत्थान से वृत्ति का अभाव हो जाता है । वैसे ही सुषुप्ति में भी होता है । इससे यही जाना जाता है कि ज्ञाता, जान, ज्ञेय तीनों का आत्मा कर्त्ता है और लय करता भी है । वृत्ति का लयकार करने से निरंकार कहलाता है । तब कुछ कहने में आता है नहीं । वृत्ति कारक होने से जानने में आता है । शंकर स्वामी का प्रमाण है कि स्वरूप के अन्दर वृत्ति की प्रकटना होता है क्योंकि वह वृत्ति को जानता है । अधिकारी का शुद्ध मन करना आवश्यक है । मन के शुद्ध होने से चित्त शुद्ध होता है । अभ्यास और वैराग्य से दोनों का लयकार श्री भगवान ने अर्जुन से श्रीमद्भागवत गीता में कहा है ।

(६२)

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं ।

अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येण गृह्यते ॥

मन जिस तरह से ठहरे चित्त जिस प्रकार ब्रह्म में लयकार हो उसी को योग कहा जाता है । और योगाभ्यास भी यही है । ब्रह्मा से चीटी तक सब का शरीर एक समान जन्म मरण इत्यादि विकारवान है । ऐसा जान कर परित्याग करना यही वैराग्य है ऐसा वैराग्य प्राप्त होना चित्त का शान्त होना इसी के अन्दर है । बिना चित्त शान्त हुये जो कुछ कर्म किया जाता है सब निष्फल होता है । श्रुति का प्रमाण है कि—

दानमि ज्यातयः शौचं तीर्थं वेदामुतं तथा ।

अशांत मनस, पुंसः सर्वमेतन्निरर्थकं ॥

दान, यज्ञ, तप, नित्य क्रिया वेद का पाठ तथा श्रवण करना सर्व निष्फल होता है । मन को शुद्ध अवश्य करना चाहिये । मन के शुद्ध हुये ईश्वर जीव का विचार होता है । विचार के प्राप्त होने से आत्म ज्ञान की सिद्धि होती है ईश्वर, जीव की एकता यही ज्ञान है । यही ज्ञान होने से शरीर का संग जीव का छूट जाता है तब जीव ब्रह्म स्वरूप स्वयं होता है । जीव नाम संज्ञा तीन प्रबन्ध के साथ हुआ है । प्राण, वासना, चेतन का प्रतिविम्ब वासना के त्याग से प्राण शुद्ध होता है । जब तक वासना का परित्याग नहीं होगा तब तक अन्तःकरण की शुद्धि भी नहीं होगी । गंध सुगंध का बोध जैसे वायु लेकर होता है वैसे शुद्ध अशुद्ध वासना लेकर अन्तःकरण में विकल्पना जोव करता है । वासना का परित्याग अन्तःकरण की शुद्धि जीव जो स्वयं निर्विकार है जीव वासना के साथ विकारी हो रहा है । वासना का त्याग उपासना से होता है । उपासना की परिपक्वता से ज्ञान द्वारा ज्ञान स्वरूप आत्मा का ज्ञान होता है । आत्मा के ज्ञान से प्राण, वासना, जीव तीनों का परित्याग आप से आप हो जाता है । वासना के त्याग से बाह्य दृष्टि और अन्तर्दृष्टि दोनों की शुद्धि होती है । बिना वासना त्याग के दोनों दृष्टि में वासना रज्जु

(६३)

सर्पवत् अनेक प्रकार से कला करके जीव को फँसा रही है। उसके त्यागने के लिये शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार का त्याग कहा है। मुख्य उपासना आत्मा के जानने का है जिसके चमत्कारी से वासना सत् रूप संसार में वर्तमान है जब वासना का त्याग हो जाता है तब वही चमत्कारी आत्मा को जनावती है। जैसे बिजली की चमत्कारी से बिजली जानी जाती है। मुख्य सिद्धान्त यही है कि त्याग नाम वासना का है और जानना नाम आत्मा का है। कहने में नहीं आता वहाँ पर मौन होना ही है। आत्मा भासमान है उसी भासमान में शास्त्रकारों, महात्माओं, आचार्यों आत्मा के जनावने के लिये रज्जु सर्पवत् आरोप करके जानने के साथ जानने वाले अधिकारी को वही वासना आत्मा को जनावती है। शेष में वासना यह नहीं है यह तो ब्रह्म रूप है क्योंकि ब्रह्म रूप का प्रमाण जो जानना है यह जानना चरण शिखा पर्यन्त व्याप्तमान है। चारों अवस्था इसी भासमान वर्तती है। जानना आत्मा का जो स्वरूप है वह कहने में नहीं आता परंच वेद प्रमाण का आरोप करके प्रकाश करता कहने के आयोग प्रकाश का लक्ष जान कर मौन होता है। क्योंकि वहाँ पर प्रमाण का लयकार है। आत्मा की शक्ति का प्रमाण है नहीं, परन्तु चेतन शक्ति आत्मा की आत्मा को जनावती है। इसी चेतन शक्ति को अंश शक्ति भी कहते हैं। यही अनेक रूप धारण करने वाली अनेक कला करने वाली करने में देरी नहीं। आत्मा को बता कर उसी में गुप्त हो जाती है इसी से इसको अनिर्वचनीय वेद में कहा है जैसे रज्जु में सर्प है नहीं परन्तु भासता है। वैसे अन्तःकरण में आत्मा का भास अनेक प्रकार का कला करता आत्म स्वरूप ही है। चेतन आत्मा का जो कला है उसमें से अणुमात्र अन्तःकरण में पड़ने से उसको जीव कहते हैं। उसी के प्रबन्ध से अन्तःकरण का जन्म होना, मरण होना, परलोक में जाना, इस लोक में आना, नाना प्रकार के उपद्रव में भ्रमण करता अन्तःकरण है अणु नहीं वह तो ज्यों का त्यों है इस प्रकार का जो भ्रम है विना ज्ञान होने नहीं मान्य है। अन्तःकरण में आत्मा का जो भ्रम है विना ज्ञान होने नहीं मान्य है। अन्तःकरण में आत्मा का जो भ्रम है विना ज्ञान होने नहीं मान्य है। अन्तःकरण में आत्मा का जो भ्रम है विना ज्ञान होने नहीं मान्य है।

होता है तब जाना जाता है । कि अन्तःकरण की व्यवस्था चेतन आत्मा करके होती है चेतन शक्ति का जब ज्ञान शक्ति के साथ एकता होती है तब चित्त की कला और कल्पना दोनों रज्जु सर्पवत् मालूम हो जाती है । श्रुति में कहा है कि—

वाचारंमण मृत्तिका विकारो माम् ।

धेयं मृत्तिके केवलं व सत्यं ॥

अनेक प्रकार का उपद्रव मृत्तिका से होता है परन्तु केवल मृत्तिका ज्यों का त्यों है वैसे आत्मा में जो चित्त की कला होती है वह कला आत्मा की है । चित्त जड़ होने से मिथ्या है ब्रह्म बिन्दु उपनिषद में आत्मा के जनाने के लिये अनेक प्रकार का कथन है । सार इसका यही है कि दस इन्द्रिय मन, बुद्धि, चित्त, अन्तःकरण प्राण आदि लेकर जितना शरीर में क्रिया होती है, सबका जानने वाला आत्मा है । इससे अतिरिक्त कोई नहीं यही बोध का ठिकाना है । और यही शास्त्र और गुरु का कहना है ।

अब नारायण उपनिषद का प्रमाण देते हैं —

“नरस्य नारायणः”

नारायण नाम आत्मा का है । नर रूप धारण करके अन्तर्यामी इस शरीर में विराजमान है । इच्छा रूप धारण करके जगत को उत्पन्न कर रहा है । नाना प्रकार की सत्ता प्रकट करके ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदित्यादि, वसुदेव, विश्वदेव, इत्यादिक रूप वाला आत्म रूप नारायण धारण कर रहा है और अग्ने में लयकार करता है । यही आत्मा रूप नारायण अखण्ड स्वरूप स्थावर, जंगम, अण्डस्य, पिण्डस्य सर्व में ओत प्रोत करके व्याप्त मान सर्व से भिन्न अन्तर्यामी, अलक्ष स्वरूप, कहने में नहीं आता जानने तक बोध स्वरूप है यही अन्तर्यामी के जानने से जन्म मरण के फन्दे से छूटना है आगे कोई कर्तव्य छूटने का नहीं है और यही अन्तर्यामी आत्मा का महोपनिषद में प्रमाण दिया जाता है कि प्रलय

काल के आदि में एक नारायण निराधार अखण्ड रूप रहा है द्वैत पर-
पंच कुछ नहीं रहा परन्तु अपने क्रीड़ा करने के लिये द्वैत रूप का ध्यान
करता हुआ तब माया रूप धर कर किसी में आप प्रवेश करता हुआ
बाद तेरह पुत्र एक पुत्री प्रकट किया। उसी पुत्री से अधिदैव, अव्यात्म,
अधिभूत प्रकट हुये। सब का कर्ता केवल नारायण देव हैं और बलाट
से रुद्र भगवान को नारायण देव ने प्रकट किया सूर्य, चन्द्र, अग्नि तीन
नेत्र रुद्र भगवान के हैं उसी नारायण देव से स्वेद नाम पसीना बिंदु
प्रकट हुआ। उसी से वीर्य रूप धारण करके अपना तेज उसमें प्रकट
करके अण्डे के समान प्रथम प्रकट किया। उस अण्डे के मध्य में नाभी
चक्र और कमल जिस पर ब्रह्मा विराजमान प्रकट हुये ब्रह्मा से चार वेद
आदि मुनियों की उत्पत्ति सबकी हुई है और वास्तव में जैसे नट सब
तरह का नाटक करता आप उस से निर्विकार रहे वैसे नारायण देव सब
प्रकार का कर्ता और वास्तव में आप निर्विकार रहे। ऐसे नारायण देव
का जो अधिकारी आत्मा जान कर भरपूर उसमें प्रबोधक रहेगा तो फिर
संसार में उसका आना न होगा यही महोपनिषद का सार है जो लिखा
गया है। अब आत्म बोध उपनिषद का प्रमाण देते हैं।

आत्म बोध के लिये दो प्रकार का उपाय है—(१) प्रणव मंत्र
(२) अष्टाक्षर मंत्र। ॐ नमो नारायण। दोनों में अष्टाक्षर आत्मा
का शब्द वाचक है। वह शब्द ब्रह्म स्वरूप है। दोनों शब्द का लक्ष ब्रह्म
का स्वरूप है। यही दोनों मंत्र अविद्या का नाशक अधिकारी के लिये
शास्त्र ने कहा है। जब तक निर्गुण का बोध न हो तब तक सगुणो-
पासना करना चाहिये; क्योंकि ब्रह्म का ध्यान करना पहले अधिकारी
का सगुण में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य इत्यादिक का प्रमाण है क्योंकि श्री
भगवान ने अर्जुन को अपना विराट रूप सगुण में दिखलाया। व्यास
भगवान महाभारत में कृष्ण भगवान् का बड़ा प्रभाव वर्णन किया है।
श्री मद्भागवत में श्री शुकदेव मुनि ने कृष्ण भगवान का प्रभाव ब्रह्म
रूप ही का वर्णन किया है जो अधिकारी पहले सगुण ब्रह्म का ध्यान

किया है, वे सगुण ब्रह्म का साक्षात् जानता भया है । सगुण ब्रह्म अपनी इच्छा प्रकट करके उपाधि के साथ तदाकार वृत्ति करके ब्रह्मा से चींटी तक अनेक रूप धारण किया है जब तक अपने स्वरूप का पहिचान नहीं होता है । तब तक कारण ब्रह्म का पहिचानना कठिन है । कारण ब्रह्म का पहिचान ब्रह्म विद्या से होती है । ब्रह्म विद्या के लिये अस्वलायन ऋषि ब्रह्मा जी के पास गये । तब ब्रह्मा से प्रश्न किया कि सब विद्या से कौन विद्या श्रेष्ठ है कि जिसके जानने से ब्रह्म जाना जाता है तब ब्रह्मा ने कहा कि ब्रह्म विद्या सर्व विद्या से श्रेष्ठ है । इसी से निरंकार रूप अपना आत्मा जाना जाता है ।

परन्तु गुरु शास्त्र अपना अन्तःकरण निश्चय करने से आत्मा जाना जाता है । चित्त की वृत्ति आत्मा से जब तक तदाकार नहीं पहुँचती तब तक आत्मा का तदाकार निश्चय नहीं होता ।

वाह्य विषय का श्रवण नाम है मनन नाम चित्त का ।

पल पल चित्त कभी न भूलै निद्वयासन करने का ॥

धरा ध्यान तब लगी समाधी पहुँच गया जहाँ जाने का ।

बैठ एकान्त अमिय रस पीवे भूलि गया कहने का ॥

अनुभव गम्य वेद अस चित्त वाह्य वेद सब फीका ।

चित्त पलंग पर सम्हरि बैठिके समुक्ति रहा अपुनहिका ॥

चार वेद पट शास्त्र पढ़ा जेते नहि पाया उसी का ।

रामेश्वरानन्द मूढ़ कुबुद्धे गुरु तेहि दीन उसी का ॥

गुरु शिष्य संवाद—

एक व्यक्ति जो अल्प वयस्यक संसार सागर की तरंगों से अनभिज्ञ परन्तु पूर्व जन्म संस्कार वशात् हृदय में यह प्रश्न लिये चिंतातुर होकर भ्रमण कर रहा था मैं कौन हूँ, संसार क्या है, इसका सिरजन हार कौन है ? भगवत की इच्छा से वह एक ब्रह्मनिष्ठ महात्मा परम दयालु के पास अनजान ही में परन्तु अन्तःकरण में स्वाभाविक श्रद्धा लिये पहुँच

गया । और विनम्र भाव से दण्डवत् किया और परम शान्ति को पाकर अति प्रसन्न हुआ तथा महात्मा के वचनामृत द्वारा हृदय ताप को प्रकट करने की आज्ञा पाकर कहने लगा ।

शिष्य :—हे भगवन् मैं संसार सागर में डूब रहा हूँ तथा नाना प्रकार का कष्ट काम, क्रोध, लोभ, मोहादि द्वारा पा रहा हूँ । इससे मैं दुःखी हो कर आपकी शरण में आया हूँ और अनुभव करता हूँ । जब तक इनसे मैं निवृत्ति न होऊँगा मेरे को सुख की प्राप्ति नहीं है । इससे मेरे को कृपा करके वह उपदेश करें कि चित्त की शान्ति हो ।

गुरु :—गुरु के चरण रेणु जब अन्तःकरण रूपी दर्पण में लगेगा तब जन्म जन्मान्तर की काँड़ी छूटेगी और दर्पण निर्मल हो जायेगा जिसके द्वारा शान्ति को प्राप्त होगा ।

शिष्य :—चित्त अन्तःकरण में से चलता है । इससे चित्त जड़ है या चेतन । जब चित्त जड़ है तब कुछ कर नहीं सकता । जब चेतन हो माना जाय तो बिना क्रिया के कर्ता नहीं होगा । यह बात समझ में नहीं आती कृपा करके बतलावें ।

गुरु :—चित्त दो प्रकार के प्रबन्ध से बनता है । वासना और चेतन और अन्तःकरण से जाना जाता है तथा चित्त अन्तःकरण ही है ।

शिष्य :—अन्तःकरण की सहायता से चित्त जाना जाता है और ब्रह्म अन्तःकरण से भिन्न है । अभिन्न को भिन्न कैसे जानेगा क्योंकि चित्त ब्रह्म से भिन्न है ?

गुरु :—चित्त शरीर से भिन्न है और शरीर का व्यवहार प्राण का संबन्ध लेकर जानता है । तो जब चित्त शरीर से भिन्न है तब यही चित्त ब्रह्म रूप है । और इसी को जान, इसके जानने से काम, क्रोधादि शान्त हो जायेंगे ।

शिष्य :—जब चित्त को जाना कि ब्रह्म रूप है तब चित्त अचित्त ब्रह्म रूप हुआ । तो पाँच तत्व की शरीर का लयकार होगा कि रहेगा ?

गुरु :—जन्म देने वाले संस्कार का लयकार होगा और शरीर का व्यवहार देने वाला रहेगा; क्योंकि फिर जन्म तो होगा नहीं। तथा चित्त में लेश मात्र शरीर के व्यवहार करने के वास्ते प्राण वशात भोग करके अन्त में लयकार हो जायगा।

शिष्य :—जब चित्त में लेशमात्र कर्म का बीज रहा तो फिर आपने क्यों कहा कि चित्त ब्रह्म रूप है क्योंकि ब्रह्म अलख निरंजन है और अज्ञान कर्म बीज लेकर चित्त है फिर चित्त ब्रह्म में एकाकार कैसे होगा।

गुरु :—अधिकारी के समझाने के लिये कर्म का प्रधान लेकर चित्त को भिन्न कहा है फिर जब चित्त को समझ जायेगा तो आप भी कर्म को तथा अज्ञान को मिथ्या समझ जायेगा। यह पूर्ण ज्ञानी का सम्मत है।

शिष्य :—पूर्ण ज्ञानी अज्ञानी को निकाल डाला तो संसार के मरजादा पर कैसे चलेगा; क्योंकि संसार अज्ञान का पसारा है।

गुरु :—पूर्ण बोध के ठिकाने पर ज्ञान, अज्ञान का कहना है नहीं और जो कुछ कहने में आवेगा वह ज्ञान अज्ञान का सम्बन्ध है परन्तु ज्ञानी महात्मा की इन्द्रिय अनुभव गम्य रूप है। वह ज्ञानाकार संसार का अदेशक है।

शिष्य :—जब ज्ञान के उपदेशक है तब संसार की मरजादा लेकर कहेंगे कि नहीं ?

गुरु :—मरजादा लेकर सही कहेंगे। परंच ईश्वर को लेकर कहेंगे कि संसार का कर्ता ईश्वर है और संसार के मध्य में आप विराजमान है परन्तु ईश्वर का ज्ञान बिना गुरु के नहीं होगा। संसार का पहिचानना ईश्वर के ज्ञान से होगा।

शिष्य :—जब ज्ञान स्थित महात्मा हैं तो ईश्वर स्वरूप हैं जब ज्ञान अज्ञान का प्रकाशक ईश्वर है तो महात्मा भी होंगे। आपने आगे कहा है कि पूर्ण ज्ञानी ज्ञान, अज्ञान से भिन्न हैं तो आपके कहने में विरोध हो गया।

गुरु :—तुम्हारी बुद्धि में पत्थर जम गया है क्या ? हम आगे इस बात को कहा है तो क्या हुआ । जब दोनों को जानता है तब दोनों से भिन्न है कि नहीं फिर पूर्ण ज्ञानी महात्मा में ज्ञान अज्ञान कहां है कि विरोध हुआ ?

शिष्य :—जब प्रारब्ध का लेश मात्र चित्त है तो आनन्द का अनुभव करता ज्ञानी महात्मा भी है फिर लेश मात्र प्रारब्ध के अन्दर अज्ञान भी रहेगा । वह वर्णाश्रम का व्यवहार अवश्य उदय करेगा फिर ज्ञानी से भी संसार का व्यवहार करवा सकता है ।

गुरु :—ज्ञानी महात्मा का वाक्य अनुभव गम्य है विचार कर कहते हैं जला चना कभी जामने वाला नहीं है । इसी प्रकार जला हुआ प्रारब्ध भी जन्म का कारण नहीं हो सकता केवल भोग का सहायक है ।

शिष्य :—जब मन कहने में आता है तो अवश्य कहवा देगा । अर्थात् संसार व्यवहार जानि वर्ण आदि । वाक्य इन्द्रियों में विक्षेप करके क्योंकि प्रारब्ध बलवन्त रहता है जाति का लेश उसमें अवश्य रहता है क्यों न कहवावेगा ।

गुरु :—जब कहेगा तो ज्ञानी नहीं है वाचक शास्त्र चक्रवर्ती है और ज्ञान से दूर है ।

शिष्य :—फिर देश में महात्मा तो कहे ही जायेंगे ।

गुरु :—जब देश में महात्मा कहे जायेंगे तो क्या जो शास्त्र से बाहर ज्ञान है उसमें गेर देंगे ।

शिष्य :—फिर कैसे जाना जाय कि शास्त्र से बाहर जो ज्ञान है उसको नहीं जानते ?

गुरु :—जानने द्वारा जो अखण्ड निरंजन है फिर उसको वेद क्या जानेगा । वाणी का गम्य नहीं है फिर शास्त्र वाच की क्या जान सकता है ।

शिष्य :—जब वेद से बाहर अनुभव गम्य ज्ञान रूप है तो शास्त्र से लेकर जाना जायेगा कि अनुभव से ?

गुरु :—सुनो कोई महात्मा का वाक्य है ।

पद :—जानन हार। अलख निरंजन तिसको वेद न जाने ।

कहैं जरूर बुद्धि वरतक ह्वैं जानन हार लखावै ॥

गुप्त प्रकट तदाकार वृत्ति ह्वैं लहर अनेक उड़वै ।

ऐसे अगम अथाह जानिके मौन रूप ह्वैं जावै ॥

अखण्ड रूप निरंजन जो अपना रूप करके जाना है वह तो वेद से बाहर आना है और वेद उसके लिये है कि जिसकी बुद्धि सूक्ष्म तलवार की धार के समान तीक्ष्णता है कि जनावत हीं आप लयकार होकर अनुभव गम्य बोध का ठिकाना है ।

शिष्य :—जब बुद्धि का लयकार हो गया तो अनुभव गम्य में कलोल कैसा ?

गुरु :—कलोल का प्रभाव जैसे समुद्र में तरंग उठती है फिर उसी में समा जाती है तैसे चेतन ब्रह्म रूपी आत्मा में आप ही उठना है फिर आप समा जाता है और ज्ञानी महात्मा का कलोल भी यही है ।

शिष्य :—ज्ञानी महात्मा जब कलोल में मगन रहते हैं तो भ्रूष प्यास लगती है या नहीं ?

गुरु :—लगती हैं जरूर परन्तु अपने में नहीं मानते वह अन्तःकरण और प्राण के साथ जो चित्त कला उनको लगती है ऐसा मानते हैं ।

शिष्य :—प्राण तो आत्मा रूपी ब्रह्म से भिन्न है और विश्व रूपी चित्त चेतन ब्रह्म से भिन्न नहीं जल बिम्ब व सूरज के समान । तथा जब भिन्न नहीं है तब जीव क्यों कहा जाता ?

गुरु :—जब सुख-दुख का अनुभव करता और वासना प्रबंध है तब जीव अवश्य मानना पड़ेगा ।

शिष्य :—चेतन ब्रह्म का बिम्ब चित्त कला के साथ तदाकार रूप जल बिम्ब सूर्य के समान चित्त कला का कर्तव्य जानता हुआ तिससे भिन्न है तो चित्त कला में सुख-दुःख माना है कि चेतन में ?

गुरु :—चित्त कला के साथ जब तक चेतन का सम्बन्ध है तब तक जीव संज्ञा माना जाता है । और जब कला का परित्याग करके निरकेवल चेतना होगा तो तिसमें कहना क्या वह तो स्वयं है ।

शिष्य :—ब्रह्म ज्ञानी चित्त कला के मध्यवर्ती होकर अपने को जानते भये हैं कि पहले ही से अपने को भिन्न जाना है ।

गुरु :—जानना तो चित्त कला लेकर अवश्य है परन्तु वह कहने में नहीं आवेगा । इससे कला से भिन्न है कला अनित्य है । आत्मा नित्य है स्वयं है ।

शिष्य :—जब कला अनित्य है तो सुख-दुःख भी अनित्य है तो संसार कहाँ ठहरेगा जीव के भ्रमाने के लिए ?

गुरु :—जब तक अज्ञान लँके कला रहेगी तब तक जीव और संसार दोनों रहेगा और अपने का बोध भी न रहेगा । ज्ञान के अन्दर में संसार है नहीं संसार तो अज्ञान के अन्दर है और जीव भी ।

शिष्य :—जब ज्ञान और अज्ञान का जानना ब्रह्म है तो दोनों उसी से है फिर ईश्वर जीव और संसार रूपी कला यह तीनों उपाधि क्यों किया ?

गुरु :—तीनों उपाधि न करता तो चौरासी किमसे होती और उस ब्रह्म का ज्ञान कैसे होता कि जो सबसे परे है ।

शिष्य :—सबसे परे ब्रह्म बोध स्वरूप है तो संसार उसी से भासमान है कि नहीं ? जब कहो कि उसी से है तो भिन्न कहाँ ठहरा ?

गुरु :—अधिक भगड़ा बढ़ाने से कुछ काम नहीं है । थोड़े में हम कह सकते हैं सुनो चौरासी लक्ष योनि, नाना प्रकार के जीव, सत्तरह तत्त्व

की तीन शरीर, तीन अवस्था चौथी तुरीया अवस्था, बिम्ब रूप कारण ब्रह्म यह सब अन्त में जानोगे अभी जो पूछना हो तिसको पूछो ।

शिष्य :—जब चेतन ब्रह्म कारण हुआ तो जीव का कौन दोष है ? सब उपाधि ब्रह्म में पाया जाता है ?

गुरु :—ऐसा न कहो । अभी उसकी कला को नहीं जानते । जब जानते तब ऐसा न कहते ।

शिष्य :—अज्ञान का जानना क्या ब्रह्म से भिन्न है भिन्न मानने से द्वैत का निरूपण होता है ।

गुरु :—अवश्य भिन्न है जैसे जल के तीर खड़े रहोगे तब भी भिन्न हो जब अथाह जल में रहोगे तब भी भिन्न होगे क्योंकि जल को जानते आप हो, जल आपको जानता नहीं ।

शिष्य :—अभी हमारे समझ में भिन्न का अर्थ नहीं आया, क्योंकि चित्तकला के अन्दर हम हैं तो जाने कैसे क्योंकि जब हम चित्त कला का परित्याग करते हैं तो शून्य रूप हो जाते हैं ।

गुरु :—जब चित्त कला को जानते हों तो कला से आप भिन्न हो । जब कला को लयकार करोगे तो आप अभिन्न होंगे । शून्य रूप क्यों मानते हो ।

शिष्य :—कला का परित्याग करने में हम लगे तो हैं परन्तु क्षण-मात्र में कला उठती है और अनेक व्यवहार करती है । सब व्यवहार को जानता प्रकाश रूप है तब कैसे त्यागें । आप कोई युक्ति बतावें ।

गुरु :—त्यागने की युक्ति यही है कि चाहना किसी वस्तु की न करो और कला को जानते रहो फिर इसी का अभ्यास करते रहो यही कला ठिकाने पर पहुँचावेगी ।

शिष्य :—बोध के ठिकाने पर पहुँच कर फिर अज्ञान जाना जाता है कि नहीं ?

गुरु :—अज्ञान का लयकार करता शेष जानता रहेगा ।

शिष्य :—जब जानता है तो बिना द्वैत का आधार लिये कैसे जानेगा ?

गुरु :—चित्त कला का प्रवर्तक और उसका जानता चेतन ब्रह्म द्वैत का आधार बन कर जगत का कर्ता है परन्तु बोध के ठिकाने पर ये कला लयकार हो जाती है शेष जानता रहेगा ।

शिष्य :—जब चेतन ब्रह्म ही कारण हुआ तो जीव का कौन दोष है । ब्रह्मा ही में सब दोष पाया जाता है तो हम निर्दोष कैसे मानें कि जानता निरकेवल है ।

गुरु :—निरकेवल चेतन आत्मा को आप जानता तो ऐसा प्रश्न न करता, क्योंकि चेतन ब्रह्म में दोष लगाना यही अज्ञान है ।

शिष्य :—जब अज्ञान का जानता अज्ञान में वशीभूत होकर चित्त-कला करना है तो हम कैसे जाने कि निरकेवल भिन्न है ।

गुरु :—भिन्न का अर्थ हम आपको दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं । कोई एक व्यक्ति भवान बनवाया जिसमें तीन कोठरी रहने के लिये बनाया । एक में बैठ कर राज का कर्ता, दूसरे में हिसाब का कर्ता, तीसरे में आराम के लिये सब काम को छोड़ कर सुख से सोना है तीनों कोठरी और मकान, राज हिसाब सब बातों का भगड़ा छोड़कर सबसे भिन्न मो रहा है तैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों कोठरी इस शरीर में बनाया है नेत्र रूपी कोठरी में राज करता, स्वप्न रूपी कोठरी में जन्म जन्मान्तर का हिसाब करता, सुषुप्ति रूपी कोठरी में सब का त्याग करके निरकेवल लेश मात्र कर्म का बीज लेकर सोता है ।

शिष्य :—जब लेश मात्र कर्म का बीज लेकर सोता है तो जानने वाला कर्म का है तो अज्ञान का सम्बन्धी है ।

गुरु :—अज्ञान का सम्बन्धी नहीं है जो कुछ कर्ता है ज्ञान के अन्दर चित्त-कला का धारण करता है । होती अनहोती सब बातों का जानता है और निरकेवल भी रहता है ।

शिष्य :—जब ज्ञान के अन्दर चित्तकला का धारण करता है तब इच्छामान ठहरा तो ज्ञान के अन्दर क्रिया भी माननी पड़ेगी ?

गुरु :—क्रिया शक्ति जड़ है उसी की चेतन्ता से चेतन मानी जाती है । इसी जड़ शक्ति से संसार की रचना करता है । परन्तु चेतन केवल निरकेवल रहता है ।

शिष्य :—आपने कहा कि सर्व कर्ता और निरकेवल भी है तो कर्ता होने से तो जाना जाता है कि कर्ता है और निरकेवल होने से कैसे जाना जाय ।

गुरु :—निरकेवल जानना कठिन भी है और सरल भी गुरु शास्त्र द्वारा तो सरल है और बिना गुरु शास्त्र की कृपा के कठिनतर है, क्योंकि जों अलक्ष है वह बिना गुरु शास्त्र के लखाये कैसे जाना जावेगा ।

शिष्य :—जब वह अचिन्त्य है शक्तिमान है तो कहने में कैसे आवेगा कि गुरु शास्त्र से जाना जाता है जब कहने से जाना जायगा तो अलक्ष रूप न होगा । रूपवान है फिर रूपवान वस्तु सब बिना गुरु शास्त्र के जानते हैं ।

गुरु :—बिना अरूप था रूपवान होवे नहीं सत्ता बिना जीव था शरीर किसी की नहीं है तैसे गुरु शास्त्र बिना अरूप आत्मा का बोध नहीं हो सकता । रूपवान शरीर होती है उसके जानने से आत्मा का बोध नहीं हो सकता है ।

शिष्य :—जब इच्छा आत्मा के अन्दर प्रकट होती है और बाहर भासमान होकर आत्मा को जनावती है तो आत्मा का जानना इच्छा के संबंध से होता है । फिर अरूप आत्मा कहाँ हुआ रूपवान मानना चाहिये ?

गुरु :—इच्छा को आपने पहिचाना है उसका क्या स्वरूप है ?

शिष्य :—हम पहिचानते तो है नहीं परन्तु कहने से जाना जाता है कि बिना इच्छा के कोई इन्द्रिय कर्तव्य को नहीं कर सकती ।

गुरु :—इच्छा का पहिचानना बिना आत्मा के पहिचाने कदापि नहीं हो सकता । चाहे शास्त्र वक्ता क्यों न हो । आत्मा अपने जानने के लिये स्वयं इच्छा को धारण करता है ।

शिष्य :—जब अपने पहिचानने के लिये स्वयं इच्छा धारण करता है तो जीव, ईश्वर की कल्पना शास्त्र में क्यों की गई । शास्त्रकारों ने कहा है कि ईश्वर कर्त्ता, जीव भोक्ता है । इसलिये स्वयं आत्मा को कहना चाहिये कि सब कर्त्ता आत्मा है ।

गुरु :—अज्ञान का प्रबन्ध लेकर जीव, ईश्वर की कल्पना शास्त्र में अज्ञानियों को समझाने के लिए शास्त्रकारों ने लिखा है और बुद्धिमान समझ लेते हैं कि जिसका जन्म नहीं है अर्थात् अजन्मा है तो जीव तथा ईश्वर कहाँ रहा ।

शिष्य—जब जीव, कल्पना मात्र है तो आत्मा का जानना भी कल्पना मात्र हो जायेगा क्योंकि जो इन्द्रियों से जाना जाता है । वह कल्पना मात्र शास्त्र में कहा है ।

गुरु :—शास्त्र जीव, ईश्वर का जानता तो कहाँ है ? तो आत्मा जानता रूप ठहरा । इसलिये कल्पना मात्र कैसे हो सकता है ?

शिष्य सम्बोधन :—हे गुरु, हे नाथ, हे सर्वज्ञ स्वरूप, हे चेतन स्वरूप, हे निरंजन नाथ ।

भजन

आपुहि आप समाया ।

स्वयं प्रकाश न सोवत जागत नहि कहूँ गया न आया ।

नहि उत्पत्ति नहि प्रलय सृष्टि ईश्वर जीव न माया ।

वेद कुरान शिष्य नहि मुरशिद अलख अरूप अजाया ॥

नाम रूप क्रिया रज्जु सर्प जिमिअद्भुत खेल दिखाया ।

श्री मगनानन्द स्वरूप अखण्डित गुरु दृष्टि दरशाया ॥

निष्काम कर्म योग का लक्षण

भगवत् कृपा, गुरु महाराज की कृपा जब होती है तो निष्कामता बुद्धि होती है। तब बुद्धि जानती है जो किसी को नहीं चाहता उसे सभी चाहता है ! जो कुछ नहीं करता वही सब कुछ करता है। भोग और कुछ न करने से योग अपने आप हो जाता है। संसार, परमात्मा तथा अपने आप तीनों का समझना यही विचार है। यही विचार अखण्ड समाधि का कर्त्ता होता है। प्रेम, चिन्तन, ध्यान, योग यह सब तब तक है जब तक ज्ञानाभास की प्रबलता नहीं होती। ज्ञानाभास की प्रबलता से यह सब समाप्त हो जाते हैं। जगत् उसी की सत्ता मात्र ही है। चेतन स्वरूप स्वयं प्रकाश है। असत् तीनों काल में है नहीं। सत् स्वयं प्रकाश स्वरूप है। आनन्द तीनों काल में प्रिय है। ज्ञानाभास स्वरूप है जो कुछ भासित करता है उसको स्वयं अनुभव करता है। किसी को जानना और किसी को न जानना उसी से अवश्य होता है क्योंकि जानने वाली सत्ता उसी से हैं। असत् से हट जाना यही सत् ज्ञान है सत् में मिल जाना यही अनुभव स्वरूप है। इन्द्रिय, विषय वासना, मन, बुद्धि सबसे परे चित्त चेतन स्वयं प्रकाश सो अपने आप समुक्त लेना यही लय चित्तन योग है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनको नीरस जानना परम तत्त्व समझना यही विलीन होना है। विचार की प्रबलता से जिज्ञासा बढ़ जाने पर अकथनीय अपार निज स्वरूप के अनुभव हो जाने से योग आपसे आप हो जाता है। सत् उपदेश यही है कि शरीर मत बनो। किसी काम की प्रसन्नता मत खरीदो कोई विषय की आशा मत करो। निर्विषय होकर अपने स्वरूप में प्रेम बढ़ाओ और आनन्द लूटो। अनुभव गम्य में अनुभव कर्त्ता समझने के लिए संसार का आरोप किया गया है वास्तव में है नहीं।

अनुभव तत्त्व ही भाषित है। वही गुरु तत्त्व है। अनेक प्रकार से भाषित होता है। भासमान का ध्यान नहीं किया जाता जानना ही जाना जाता है। सविकल्पक तथा निर्विकल्पक समाधि में कार्य कारण का भाव रहता है। अखण्ड समाधि में बीज का लयकार है। तत्त्व ज्ञान ही विचार स्वरूप है विचार ही वेद है। वेद ही अपना आप है अपना आप कहने में नहीं। वाणी से परे है। अपना आपका समझ जाना शान्ति है जानना ही भजन है, जो बनकर मिट जाय उसका जानना भूल है। यथार्थ ज्ञान अभेद हो जाना ही है। मानी हुई सत्ता की प्रबलता विचार का स्वरूप है। अपने आपका जानना योग विचार है। विचार की प्रबलता सच्चा तप है। भाषित होकर प्रकाशित जो करता है उसको मिटा देना लय-चिन्तन है। अपने को कमी न जानना अथाह जानना यही अथाह अवस्था है। विचार-अनविचार दोनों कहने में आता है। बोध के ठिकाने पर मौन रहना है। जब तक राग है तब तक वैराग्य है। जब राग नहीं है तब वैराग्य कहाँ। विचार राग को खा जाता है तब अखण्ड बोध प्राप्त होता है।

जगत के रूप में भी निज स्वरूप का होना अनुभव तत्त्व दृष्टि वही कहलाती है। जब तत्त्व दृष्टि प्राप्त हुई तब अनुभव गम्य में जगत समाप्त हुआ। जब बोध हुआ तब मनन कहाँ। बोध का स्वरूप स्मृति है। स्मृति चेतन, प्रकाशमान तथा भूत-भविष्य, वर्तमान तीनों का प्रकाश करता है। क्रिया शक्ति जब तक रहती है तब तक चित्त कर्त्ता रहता है। तत्त्व दृष्टि को सम्भालो और चित्त को लयकार करो तब देखो क्रिया शक्ति कहाँ रहती है।

क्रिया शक्ति इच्छा के आधार पर चलती है। इच्छा का आधार शक्ति की कला है। शक्ति की कला शक्ति मान के अन्दर है सो अपना आप है।

बोध स्वरूप, निजानन्द, का तेज सब इन्द्रियों में समान है। इन्द्रियों का चक्र चल रहा है। निजानन्द अचल वर्तमान है।

अचल सिंहासन अपना आप है । आपके सामने आपकी शक्ति नृत्य कर रही है । आप बोध स्वरूप सबको बोध कर रहे हो । अपना पद उठा लो अचल सिंहासन पर आराम करो ।

आचार्य मत

भारत खण्ड में बहुत महात्मा, बहुत विद्वानों, का युगों में अवतार, नारायण का होता चला गया है और चला जायेगा ।

यह भारत खण्ड आचार्य कों पीढ़ी है उनके वाक्यानुसार कुछ लेख करते हैं ।

द्वैत प्रपंच अविद्या जनित इसलिये है कि ब्रह्म विद्या जानने के लिये कल्पना किया है । जहाँ दूसरे को देखता है दूसरे को कहता है दोनों को हटा लेने से ब्रह्म विद्या स्वयं प्रकट होती है ।

ओंकार निर्णय करने से आत्मा स्वयं जाना जाता है । ऊँ जहाँ से प्रकट होता है और जहाँ समा जाता है वस आत्मा वही है । रज्जु में सर्प, सीपी में चाँदी, तंसे वाक् विलास करता आत्मा वाणी में झलक रहा है । गीता में भगवान् ने कहा है कि—“शब्द ब्रह्म प्रवर्तते” वाच्य, वाचक, रूप द्वारा आत्मा जाना जाता है । तीन अवस्था साक्षी की कल्पना इसलिए है कि आसाक्ष साक्षी करके जानता है फिर असाक्ष और साक्षी का अभाव कर देने से बोध स्वरूप में कहना ही क्या । वह तो अनुभव गम्य है ।

चार पादों वाला आत्मा इसलिए कहा है कि चारों में झलकता चेतन रूप है । चेतन रूप सूक्ष्म से सूक्ष्म इसलिये कहना है, “अयंमात्मा ब्रह्म” है तो जाना कैसे जाय ?

चित्त रूप अवस्था में झलक रहा है अखण्ड रूप से जान रहा है । आकाश रूप आत्मा इसलिये कहा है कि आकाश निराधार है आत्मा आधार रूप है, आकाश जड़ है आत्मा चेतन है क्योंकि वाणी का विलास

करता है। प्राण स्वरूप आत्मा इसलिए कहा है कि चेतन के तेज से चक्र चल रहा है। चक्र के धावन से वायु प्रकट हुई है।

अग्नि स्वरूप आत्मा इसलिये कहा है कि चेतन का तेजा अग्नि स्वरूप है अर्थात् ज्योति स्वरूप प्रकाशमान है। तथा तिलाभास अज्ञान को प्रकट करके उसमें अणु समान असंख्य तेज समान वर्तमान जगत को प्रकट करता लय करता शरीर में वर्तमान है। अग्नि जल स्वरूप आत्मा इसलिये कहा है कि अन्तःकरण दर्पण में जलाभास करके चित्त स्वरूप प्रकाशमान वर्तमान है।

पृथ्वी रूप आत्मा इसलिए कहा है कि शरीर रूप पृथ्वी में भाषमान असंग रूप तीनों अवस्था का उलट-पलट करता है अंधकार प्रकाश चारों युगों की खेल अज्ञान के अन्दर चित्त कला वृत्ति करके भाषमान हो रहा है। अर्थात् बोध स्वरूप के अन्दर ही हो रहा है बाहर कुछ नहीं बाहर की दृष्टि के लिये जगत प्रसारता भीतर की दृष्टि से लय करता समान रूप है। समान रूप भाषित है। प्रकाश रूप से बाहर वृत्ति देखता है।

मन स्वरूप आत्मा इसलिये कहा है कि कूटस्थ रूप आत्मा भाषित है।

बुद्धि रूप आत्मा का प्रमाण (बौद्ध मत सिद्धांत से) आत्मा का बोध कराकर वृत्ति लयकार हो जाती है। चित्त स्वरूप आत्मा चेतन रूप चरण से शिखा पर्यन्त अनुभव करता जानता है।

अहंकार रूप आत्मा में करता मैं भोक्ता का अभिमान त्याग देने से अहं स्वरूप शिव है। कला स्वरूप आत्मा कैसा हैं, सुनो है नहीं भाषित है भाषित है तो प्रकाशित है। प्रकाशित स्वरूप क्षण में अनेकों वृत्ति करता एक-एक वृत्ति के अन्दर अनेकों वस्तु दिखाती है इससे आत्मा वृत्ति करता आत्मा है।

अजन्मा आत्मा कैसे है। सुनो। है नहीं कला दिखाती है दिखाती हैं तो नहीं दिखानी है तो आत्मा दोनों को जानता है। इससे आत्मा

अजन्मा है। बोध स्वरूप आत्मा कैसा है? जो कुछ भाषित है उसको प्रकाशित करता आत्मा जानता बोध स्वरूप है।

बोध स्वरूप आत्मा का निश्चय कैसे किया जाय? निश्चय है काम बुद्धि का आत्मा को जनाकर बुद्धि लयकार हो जाती है। समझ लेना निश्चय है। यह बात समझ में नहीं आती बड़ा कठिन है?

कठिन भी है और कठिन भी नहीं है। समझने के लिये आचार्यों, महात्माओं, व्यास जी आदि ने वेदांत शास्त्र बनाया है। परन्तु शास्त्र पढ़कर भी बुद्धि का शरीर में लगाया अर्थात् शरीर बुद्धि ही रक्खा, आत्मा में नहीं लगाया। इससे कठिन है तुम ऐसा समझो कि शरीर रज-वीर्य का बुल्ला है। कभी इसका फूटना है इस निश्चय को दृढ़ रखने से आत्म तत्व जानना सरल होता है, क्योंकि आत्मा जानना स्वरूप है।

जानना इसलिये कहा है कि अवस्था साक्षी लेकर है। जाग्रत अवस्था में आत्मा जाग्रत स्वरूप स्थूल शरीर को चक्र के समान चला रहा है। दस इन्द्रियों, पाँच प्राण, चार अन्तःकरण का ऐसा कला करता अनेक वृत्तियों से जाग्रत अवस्था में भास रहा है। स्वप्न अवस्था में तेज स्वरूप करके आत्मा अनेक जन्म को याद प्रकाशमान जानता विराजमान है। सुषुप्ति अवस्था में तो आत्मा निरकेवल जाग्रत स्वरूप है परंच अज्ञान का आरोप करके सुख का अनुभव करता है।

तुरीया में आत्मा में साक्षी मात्र है जब तक अवस्था का साक्षी है तब तक अवस्था का भाषित है नहीं तो जाग्रत स्वरूप है। तीनों अवस्था में जाग्रत स्वरूप आत्मा विराजमान जब स्वरूप आत्मा का जाग्रत रूप है तो अवस्था कहाँ? अवस्था के निकाल देने से साक्षी कहाँ? तब तो तुरीया या तुरीया तीत दोनों कहाँ? अखण्ड रूप से जाग्रत आत्मा इस शरीर में विराज मान है।

विराजमान का मतलब यह है कि स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीर का व्यवहार करता आत्मा जाग्रत स्वरूप है। दृष्टा, आत्मा दृष्टी को

प्रकाश करके दृष्टि के भीतर अनेकों वृत्ति का भरी कर रहा है। अवृत्ति के अन्दर वृत्ति का लयकार करके अदृष्ट रूप से निरंजन रूप है ऐसा आत्मा अपना रूप है।

सुजान संत अपने आत्मा में वायु को प्रकट करके भूला भूल रहे हैं। शून्य शिखर पर चित्त का हिडोला करके, प्राण अपान की डोरी करके सुरति को भुलावने हार किया। आप अचल सिंहासन लगाकर भूला भूल रहे हैं। अचल समाधि के अन्दर “सोऽहं” शब्द हो रहा है। सुरति के अन्दर वृत्ति नाच रही है। अनेक प्रकार का शब्द हो रहा है। प्रकाश रूप अग्नि जल रही है। तीन गुण, काल, कर्म, जल रहा है। ऐसी अचल समाधि को कोई गुरु की कृपा से लगा सकता है। बिना गुरु के कोई पा नहीं सकता। अपने आप में मिल जाना ही अचल समाधि है। जीव, ईश्वर, माया तीनों का जला देना कर्म का जलना है। वृत्ति को अवृत्ति कर देना ही आत्मा का स्वभाव है जैसे समुद्र का स्वभाव तरंग है तैसे शक्ति के अन्दर अनेक कला प्रकट करना आत्मा का स्वभाव है। सतसंग अपने आप में करना चाहिये। एकान्त में कि जहाँ पर शब्द और दृष्टि का प्रतिबन्ध हो। दशों इन्द्रियों का पहरेदार कर देना निर्विषय में विषय का आना न हो।

पद

तहाँ पर वायु का पंखा चलता रहे ।
 वृत्तियों का चलना जानता रहे ॥
 सबका लयकार करता रहे ।
 ऐसा सत्संग रस पीता रहे ॥
 ऐसे सत्संग के अन्दर कोई भगड़ा नहीं है ।
 बिना जाने मूर्ख मानत नहीं है ॥
 वेद शास्त्र के भगड़े में भटकत सही हैं ।
 सत्संग की महिमा को हेरत नहीं है ॥

हेरने का ख्याल जब सत्गुरु के यहाँ जावे ।
 तब आप मैं आप सत्संग तुरत पावे ॥
 सत् के विचार से असत् जब गलाता है ।
 ईश जीव माया तीनों आप में समाता है ॥
 यही सत्संग है न बाहर और कुछ है ।
 आप भासमान सत् शास्त्र यही कहतु है ॥
 सत् ही सत्संग है सत् ही सत् शास्त्र है ।
 सत् ही ब्रह्म विद्या है सत् ब्रह्म ज्ञान है ॥
 सोइ अपना आप अनुभव गम्य सरूप है ।
 निश्चय से जानो अपने आप में अरूप है ॥
 नहि समझ वाले को कभी न सुनावे ।
 अमोल मणि को न कभी व्यर्थ लुटावे ॥
 समझने वाले आपैं आप तेरे पास आवेंगे ।
 मणि हीरा का हाल थाह आपैं में पावेंगे ॥
 सभी के पास वह चेतन भरपूर है ।
 जानने के निकट वे जानने से दूर है ॥
 दूर को निकट जब जानने को चाह है ।
 जानने की चाह भी सत्संग ही में थाह है ॥
 प्रकट है हजूर भरपूर भासमान रूप ।
 वृत्ति का चलाय आप खास जानवान रूप ॥
 वृत्ति चलति है जरूर अचल के अन्दर नहीं ।
 कला का प्रभाव कहीं शक्ति ही में ह्वै रही ॥
 शक्ति शक्तिमान की जरूर चमत्कार करै ।
 जानै चमत्कार को तो आप शक्तिमान बनै ॥
 बनने न बनने का ख्याल कभी न करना ।
 आत्मा का अभ्यास जो स्मृति उस पर चित्त को जमा देना ॥

स्मृति की प्रबलता बढ़ने से चित्त अचल होता है ।

अचल चित्त हो जाने से अखण्ड अनुभव होता है ॥

विस्मृति के अन्दर आत्मा जरूर है परन्तु शरीर का व्यवहार करता है । चेतन को जड़ करके उसमें शक्ति को प्रकट किया है । शक्ति के अन्दर आप इच्छा का धारण किया है । इच्छा के अन्दर संसार की रचना है । बनाना, बिगाड़ना है, तब तक उसी के हाथ है । इच्छा के अन्दर जब तक कर्त्ता बनता, बिगड़ता रहता है ।

बनने बिगड़ने का मान लेना जीव का काम है, कामना का मानना यही जीव का आहार है । कामना रूपी अहंकार जीव का अंगरखा है । अहंकार रूपी अंगरखा का जलाना ज्ञान अग्नि से होता है । तब जीव की कल्पना त्याग कर अखण्ड रूप हो जाता है । शक्ति के अन्दर विस्मृति होती है । विस्मृति के अन्दर चेतन का तेज रहता है । चेतन का तेज शक्ति के अन्दर भरपूर है । स्मृति और विस्मृति अपनी शक्ति के अन्दर आत्मा करता है । करता न करता दोनों को आत्मा जानता है । संसार का खेल इसी भाँति करता है । चेतन को प्रकाश से चित्त का धावन होता है । वासना, वायु, प्रकाश तीनों के मध्य में चित्त रहता है । जब तक विस्मृति रहती है तब तक चित्त की संज्ञा रहती है । जब स्मृति प्रकट होती है तब विस्मृति लयकार हो जाती है । स्मृति विस्मृति का खेल ज्ञानी जानता है । ज्ञान के अन्दर एक भी नहीं मानता । मानना न मानना जब तक ज्ञान नहीं होता तब तक यह खेल के अन्दर म अवश्य होता है । ज्ञान का दरवाजा खुल जाने से भाव अभाव का व्यवहार एक भी नहीं रहता ।

अब विद्या का अनुसंधान कुछ लिखा जाता है

विद्या का लाभ गीता का रहस्य ही समझना माना गया है, क्योंकि महात्माओं ने इस पर भाष्य रच कर आचार्य की पदवी प्राप्त की है । और परम सिद्धान्त गीता के पढ़ने वाले का ज्ञान नेत्र खुल जाता है ।

वेद के दो मार्गों का तथा दो भागों का सिद्धान्त मंत्र, ब्राह्मण दो वाक्य है। उसमें ब्राह्मण भाग के अन्तर यज्ञादि, कर्म काण्ड है। दूसरा ज्ञान काण्ड है। वेदों का अन्तिम उपदेश वेदान्त है। वेदान्त के तीन प्रस्थान हैं। स्रोत प्रस्थान उनिषद् है जो वेद का अंग है दूसरा स्मृति प्रस्थान है जो गीता है तीसरा प्रस्थान दार्शनिक जो वेद व्यास प्रणीत ब्रह्म सूत्र है। इन तीनों प्रस्थान के आधार पर समस्त वेदान्त साहित्य की रचना हुई है और इन्हीं पर मनुष्य को सत्य का अर्थ भी बुद्धि गम्य हो जाय तो वह कृतकृत्य हो जाता है ज्ञान के अधिकारी जिज्ञासु को समझाने वाला आचार्य कहा जाता है। भर्तृ प्रपञ्च के भाष्य का श्री शंकराचार्य ने उल्लेख किया है और उसका खण्डन भी किया है। भर्तृ प्रपञ्च के अनुसार कर्म और ज्ञान दोनों से मिल कर मोक्ष की प्राप्ति होती है। श्री शंकराचार्य कर्म का खण्डन करके केवल ज्ञान से ही मोक्ष बतलाया है। केवल विशुद्ध ज्ञान ही मोक्ष का उपाय है। तीनों प्रस्थानों का सिद्धान्त है कि ज्ञान प्राप्त होने से प्रकृति का लयकार है। इससे मिथ्या है परमेश्वर के अधीन प्रकृति तब तक रहती है कि जब तक ज्ञान पर तद्रूपाकार एकोनैक अवण्ड स्वरूप हलाहल ज्योति स्वरूप तीनों काल आते जाते रहे। परन्तु जानने से भिन्न नहीं है। जीवात्मा और परमात्मा में जो भेद मालूम होता है। वह प्रकृति का किया हुआ। यह बातें सब वहाँ समाप्त हो जानी है, क्योंकि जीवात्मा परमात्मा को अभिन्नता का ज्ञान दोनों एक स्वरूप है। इसी ज्ञान का नाम मोक्ष है। जो धर्म अधर्म विवेक से युक्त मार्ग है मोक्ष साधनों का अनुष्ठान करने के लिये चेष्टा करना ही जिसका स्वरूप है उसका नाम योग है। और तत्त्व विषयक जो बुद्धि है वही योग बुद्धि है। ऐसा प्राप्त करने वाले का नाम योगी है। पितृ, लोक की प्राप्ति का साधन रूप जो कर्म है वह मानुष धन है। और देव लोक की प्राप्ति का साधन रूप कर्म वह तो विद्या देव धन है। सर्व कर्मों से निवृत्ति होकर संन्यास ग्रहण करना जोग बुद्धि का काम है। व्यास जी का सिद्धान्त यही है कि तत्त्व ज्ञान से मुक्ति होती है। कर्म से

नहीं होती है। कर्म जड़ है। जड़ से मुक्ति कहाँ? जीव कर्म में बद्धमान रहता है और ज्ञान से मुक्त होता है। आत्म तत्व के ज्ञाता कर्म नहीं करते। जब तक ज्ञान दृष्टि नहीं खुलती तब तक इन्द्रिय सम नहीं, ज्ञान प्राप्त होने से इन्द्रिय आपसे आप शान्त हो जाती है। तब ब्रह्मचर्य की प्रबलता होती है। ब्रह्मचर्य की प्रबलता, ज्ञान का प्राप्त होना, फिर वासना का क्षय होना। संन्यास आप से आप हो जाता है। विवाह हो चाहे न हो, वासना दोनों में रहती है। क्योंकि वासना जन्म जन्मान्तरों की है। व्यास जी ने शुकदेव जी से कहा है कि आत्मा के जानने से कर्म की समाप्ति तुरन्त होती है।

अपूर्व शक्ति उत्पन्न करने वाला वेदान्त शास्त्र है। अनन्त शक्ति से आत्मा भरपूर है। उसका प्रकट करने वाला वेदान्त है। चित्त की स्थिरता की प्रबलता से योग बल की प्रबलता होती है। योग बल की प्रबलता से जानास्थित होती है। हृदय कमल में चित्त को स्थिर करके योगाभ्यास किया जाता है। शंकराचार्य स्वामी ने कहा है कि यथार्थ तत्व का जानने वाला जो योगी है उसके ज्ञान ही के अन्दर बुद्धि चमत्कार करती रहती है। योग कमल से बुद्धि बाहर निकलती नहीं है। सत् असत् का कर्त्ता बुद्धि का स्वभाव है। दोनों से परे जो अपना आप स्वभाव स्वतः स्वरूप है। उसके बाहर जाने की शक्ति नहीं रहती तो सत् असत् का कारक कैसे हो। समस्त जानने वाला जानने योग्य आप ही है उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है कि जिसको वाणी कहें।

जिसको शास्त्र प्रमाण देता है, लक्ष्य करता है, परंच जानन ही से जाना जाता है और से नहीं। उपासना का प्रमाण यही है कि वृत्तियों के प्रवाह को रोक कर और चित्त को दीर्घ काल तक स्थित रखना उसको उपासना कहते हैं।

वृत्तियों का लयकार हो जाना कैवल्य पद में पहुँचना होता है। बस इसी बात के लिये विद्या प्रकट की गई है। परन्तु पण्डित बनना, क्षेत्र

ही तक जानना, क्षेत्रज्ञ को न जानना, बड़ी ही भूल है। क्योंकि विद्या पढ़ा और अज्ञान का प्रबन्ध बना रहा।

अक्षर से विद्या निरक्षर से ब्रह्म दोनों का समझना दोनों से बाहर है। बाहर भाषित स्वरूप है, अपने प्रकाशित स्वरूप है, अपने प्रकाशित स्वरूप की छाया को स्वयं जानता है यही विद्या का लक्ष्य है। यही समझने का कर्म उपासना, ज्ञान काण्ड शास्त्र कारों ने कथन किया है, प्राणत्मवाद, भूतात्मवाद, गुणात्मवाद, तत्त्वात्मवाद, पादात्मवाद, विषयात्मवाद, लोकात्मवाद, देवात्मवाद, वेदात्मवाद, यज्ञात्मवाद इत्यादि आचार्यों का कथन है इसी बात का, कि आत्म साक्षात्कार कर लेने से सब बातों का भगड़ा छूट जाता है। कारण ब्रह्मजगत का कर्त्ता है परन्तु जब स्वरूप का बोध होता है तब सब बातों का लयकार हो जाता है। इसके अतिरिक्त जब विचार किया जाना है तो ज्ञान के अन्दर कोई लक्ष्य नहीं होता। जन्म होना, प्रलय होना, चित्तकला का काम है। चित्त कला का इस तरह से जानना चाहिये कि आत्मा भासित भासमान स्वरूप है। उस के प्रकाश की छाया में चेतन का प्रतिबिम्ब पाकर अन्तःकरण से जैसी वासना रहती है वैसा भासित होता है। परन्तु न जानने से यही कारण ब्रह्म है यही जगत का कर्त्ता है और यही कर्म संगी हैं। जब ज्ञान स्वरूप का निश्चय होता है तब आगे पीछे की बात समझ कर चुप हो जाना होता है। इस प्रकार जब आत्मा का बोध होता है तब चित्त का संकल्प नहीं होता। चेतन तथा चेतन ब्रह्म का कार्य लयकार हो जाता है। एकीकरण होने से कारण ब्रह्म, कर्त्ताकर्म कोई भी नहीं रह जाता। इसी को ब्रह्माकार वृत्ति आवृत्ति व्याप्ति कहते हैं। ब्रह्माकार वृत्ति आत्मा की शक्ति है उससे भिन्न नहीं जैसे विजली की चमत्कारी विजली से भिन्न नहीं है। न जानने से भ्रान्ति का कारण हो जाती है। अपनी चराचर व्यापिनी ज्ञान रश्मियों के विस्तार से सम्पूर्ण तीनों लोकों को व्याप्त कर जाग्रत, स्वप्न

सुषुप्ति, तुरीया लेकर जानता जाग्रत स्वरूप है। अब यहाँ पर विषय अथवा प्रयोजन की आवश्यकता नहीं है।

प्रपञ्च की निवृत्ति होने पर अद्वैत तत्त्व का बोध होता है। तत्त्व को न जानने से अज्ञान रूपी निद्रा भासती है। तीनों अवस्था में कर्ता, क्रिया रूप करके जीव को जनावती है। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती तीन वाणी जीव की, करके भोक्ता भोग करवाती है।

वैखरी वाणी :—जाग्रत अवस्था की है। नाना प्रकार के कर्मों की व्यवस्था बतलाती है। बुद्धि से कर्म कराती और चित्त से चेतना देती है। अहंकार रूप से जीव को भोग भोगाती है। स्वप्न अवस्था में लयकार हो जातो है।

मध्यमा वाणी :—स्वप्न अवस्था की है। सूक्ष्म रूपी शरीर में व्याप्तमान होकर जन्म जन्मान्तर के कर्म उदय करके जीव को दिखाती भोगाती है। यही चारो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में सूक्ष्म रूप से वर्तमान है। सूक्ष्म रूप से जीव को भोगाती है।

पश्यन्ति वाणी :—सुषुप्ति अवस्था कारण की है इसमें दोनों वाणी और दोनों की क्रिया का लयकार हो जाता है। केवल बीज रूप कर्म रहता है बुद्धि लेकर के। वही कारण रूप से जब बुद्धि जागती है तब सुख का अनुभव बतलाती है। तीनों वाणी और तीनों अवस्था परा वाणी में समाप्त हैं।

परा वाणी :—परा-वाणी को जब गुरु प्राप्त करता है तो कर्ता क्रिया कर्म सब को लेकर उसी आत्मा में लयकार हो जाती है।

सब अवस्था में आत्मा शुद्ध रहता है। चित्त की संज्ञा उठा देने से फिर कला आत्मा का स्वरूप है ब्रह्माकार वृत्ति है। जानत ही आगम निगम का ख्याल नहीं रहता। ख्याल करना जीव का काम है, माया के वश में पड़ा हुआ जैसा मान के कर्म करता है वैसी स्मृति होती है। उसी बात को जानता है। अपने को नहीं जानता। इसी से बद्धमान

है। वासना ही चित्त रूप है ज्योत स्वरूप आत्मा की उसमें रहती है। बाह्य जगत का प्रकाश चित्त करता है भीतर लयकार होता है। ऐसा जान लेना ही जीव की मुक्ति है। जैसा अधिकारी होता है वैसा समझने में उसके सामने आता है। कल्पना का कर्त्ता जीव है। साक्ष उसका आत्मा जानता है। रज्जु में सर्प के समान आत्मा में माया भासती है। सारा संसार भ्रान्ति रूप अहंकार करके जगत का ठाट बांधती है जैसी बुद्धि जीव की रहती है वैसी बात अपने को जीव मान लेता है। इसी तरह अनर्थ से विलक्षण अपने शुद्ध मन को न जान कर कल्पना के अन्दर हो रहा है सर्व संसार धर्म अधर्म ३ शून्य आत्मा का प्रतिपादक शास्त्र कहने वाला, समझाने वाला गुरु शास्त्र दोनों कहीं-कहीं हैं। जैसे अधिकारी मिलते हैं वैसा उपदेश करते हैं।

प्रधान, महत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा पाँच ज्ञान इन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, राग, अविद्या, काल, कला, पाँच तत्त्व, माया, यह सब अज्ञान से प्रकट हुये हैं। इन विकल्पनाओं से आत्मा विलक्षण है। इस बात को जो वास्तविक रूप से जानता है वह वेद का अर्थ समझ सकता है। श्री शंकराचार्य महाराज ने सिद्धांत किया है कि आत्मा का जानने वाला कर्म करता हुआ भी कर्म से लिपायमान नहीं होता।

भगवान् व्यास का भी वचन है कि जगत वर्षा की बूंद के समान नाशवाला है उसमें ज्ञानी का चित्त क्यों चलायमान होये। एक से दो हैं नहीं ऐसा जानते हैं। द्वैत की कल्पना मन का धर्म है। मन का निरुद्ध करना ही जिज्ञासु के लिये परमार्थ है। इस प्रकार संयमी जिज्ञासु अचल

वस्तु की पहिचान अवश्य करने वाले होते हैं। विशेष रूप से ब्रह्म के स्वरूप की प्राप्ति जब तक न हो तब तक मन का निरोध अवश्य करना चाहिये। स्वरूप स्थिति हो जाने से आप मन लयकार हो जायगा। सिद्धांत प्राप्त होने से असिद्धांत वस्तु की इच्छा नहीं होती। चित्त चलायमान न होने से किसी के द्वारा आत्मा चलायमान फिर नहीं होती।

अपने स्वरूप से कुछ हो या कुछ न हो अचल से बाहर न होना यही ज्ञान स्थित है और यही परावाणी ज्ञान स्वरूप ही है।

पूर्ण ब्रह्म ज्ञानी की अवस्था का निरूपण :—

ज्ञान की भूमिका सात हैं ।

(१) भगवत् में रत करना जन्म जन्मान्तर की कर्म वासना रूप जो ग्रन्थि है वह भगवत्-रत से छूटती है। जब परम प्रेम प्राप्त होता है तब कंठ गद्गद होकर नेत्र में जल मोती की तरह झलकता है। तब ज्ञान की प्रथम भूमिका प्राप्त हुई जानी जाती है।

(२) चित्त में विचारणा शक्ति की प्रबलता जब होती है तब तक का विचार करता है। एकांत में बैठकर करके विचार से शोधन करता है। कोहूँ और संसार क्या है? और संसार कैसे हुआ? संसार का सार अनित्य जानकर तत्त्व ज्ञानी को ढूँढ़ने में रत होता है। उस समय ऐसा विकल चित्त होता है कि कहाँ जाऊँ और कैसे पूर्ण ज्ञानी को पाऊँ ऐसी विकलता जब प्राप्त होती है तब पूर्ण ज्ञानी उसे आपसे आप मिल जाते हैं खोज करना नहीं पड़ता।

(३) ऐसे अधिकारी को लक्ष देते हैं और वह लक्ष देते हैं कि मन का प्रत्याहार हो जावे और चित्त को संचालने की गली मिल जावे।

(४) तब शुद्ध स्वरूप में चित्त आपसे आप स्थिर हो जाता है तब धारणा शक्ति अनुभव में खड़ी होती है। अनुभव भंग से रहित अभंग स्वरूप खड़ा होता है। आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है जैसे समुद्र में तरंग वैसे आत्मा में अनुभव रूपी तरंग होती है। अब जीवन मुक्त हो गये।

(५) शरीर में जो अभिमान भास रहा है, अनेक प्रकार का वह अभिमान परित्याग हो जाता है। अपने स्वरूप का निश्चय हो जाता है। अंश शक्ति स्वरूप के अन्दर झलक रहती है अर्थात् अमृत की वर्षा करती है। वही अमृत रूपी जल ज्ञानी महात्मा का आहार है। धर्म का मेघ

खड़ा होता है अनेकों लहर कि जिस लहर की संख्या नहीं दी जाती वह जानने के अन्दर अग्रम है। ऐसी समाधि में आनन्द रस पान कर रहे हैं।

(६) बुद्धि रूपी माया अनेकों भावना करके ज्ञानी महात्माओं को दिखाती है परन्च आगे और पीछे की बातें कहती है और लटपटाती और नहीं जानती। इससे माया गलित अर्थात्-लयकार होने की जगह पर जा रही है, बुद्धि के भाव अभाव का ज्ञान षष्ठम भूमिका प्राप्त ज्ञानी को नहीं रहती।

(७) जिस समय सातवीं भूमिका में पूर्ण ज्ञानी बोध स्वरूप पहुँच जाते हैं, तहाँ पर भावाभाव का व्यवहार कुछ नहीं। अखण्ड, निरंजन, चेतन स्वरूप, सर्वज्ञ जागता, ऐसा जानना रूपी पूर्ण ज्ञानी की अवस्था है। अब तहाँ पर न वायु है, न अग्नि, न जल, न पृथ्वी, न आकाश, यह पाँच तत्व का लयकार हो जाता है, तो आकाश स्वरूप वही नारायण ब्रह्मा से चीटी तक लेकर के सात लोक, सातों स्वर्ग, जितना कुछ कहने में आता है जीवाभास ले करके, ईश्वर माया, ले करके ओत-प्रोत ऐसा पूर्ण ज्ञानी महात्मा को जानना चाहिये और वही सत्गुरु है।

जो अधिकारी जिज्ञासु ऐसे ज्ञानी महात्मा से मिलेंगे उसके सुख की, उसके तपस्या की, उसके धन्य भाग को वेदांत शास्त्र आशा करता है। क्योंकि वेद का जानने वाला वही जिज्ञासु जानता है शास्त्र पढ़ा परन्तु उसके तत्वानुसंधान को न जाना। इससे शास्त्र वेदांत निरर्थक होकर दुःख प्रकट करते हैं। वेदांत को जिज्ञासु जानता है और जिज्ञासु को वेदांत जानता है। वेद का अन्वय वेदांत है। वेद ही आत्मा है जैसे समुद्र और उसमें तरंग चलती है। तैसे वेद रूपी आत्मा की झलक वही वेदांत हुआ। झलक से अलख की पहचान होती है। अलख की पहचान व्यास जी को हुआ, कि जिन्होंने वेदान्त की रचना की और ब्रह्म सूत्र बनाया, पुराण की रचना की। पुराणों के अन्दर युगों-युगों में जो निमित्तावतार धारण करके जो चरित्र हुआ उसे आर्त्त, अर्थी, अर्थार्थी

यह तीनों जिज्ञासुओं के समझने के लिये ही ऐसा चरित्र किया है। अपने-अपने हित की भक्ति के अनुसार तीनों भक्त उसमें से धारण करते हैं। द्रौपदी, गजेन्द्र इत्यादि आर्त्त भक्त हैं कि जब संकट पड़ा तब निराधार नारायण की भक्ति प्राप्त हुई है। उसी भक्ति ने उनको पुकारा है। प्रेम भक्ति के न होने पर भी संकट अवस्था में जो भक्ति प्राप्त हुई उस भक्ति की डोर से बंधे हुये नारायण ने प्रकट होकर कार्य पूर्ण किया।

ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा, शबरी इत्यादि अर्थी भक्त थे, जिनको ऐसी प्रेम भक्ति प्राप्त भई, कि नारायण स्वरूप का साक्षात्कार किया। ध्रुव को अचल भक्ति तथा प्रह्लाद मीरा, शबरी आदि को प्रेम भक्ति प्राप्त हुई। यह भक्त अर्थी हैं।

अर्थार्थी :— अर्थार्थी भक्त अपने का भी कल्याण करता तथा दूसरों के हित का भी साधन करता है जैसे मनु व शतरूपा आदि पुत्र की आशा लेकर तप किया है। स्वयं नारायण पुत्र बने और कितने राक्षसों का उद्धार किया।

ज्ञान दो प्रकार का है—

(१) परोक्ष (२) अपरोक्ष।

परोक्ष :— सत्, चित्, आनन्द रूप ब्रह्म है। यह तो शास्त्र को लेकर परोक्ष ज्ञान है। यह जन्य ज्ञान जब तक पूर्ण ज्ञानी महात्मा नहीं मिलेंगे, तब तक यह परोक्ष ज्ञान अपरोक्ष में नहीं जायेगा, क्योंकि आवरण लेकर है 'तत्त्वमसि' महावाक्य लेकर जनाता है। जब तक आवरण की निवृत्ति के लिये शास्त्र की धारणा तत्त्वानुसंधान प्राप्त होने से अपरोक्ष का उपयोगी होगा। ब्रह्मनिष्ठ गुरु वेदान्त शास्त्र का तत्त्वानुसंधान परोक्ष ज्ञान वाले को जब शिक्षा मिलेगी तब अपरोक्ष ज्ञान का अधिकारी वह बन जायेगा। तब समझ जायेगा कि सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म मैं हूँ।

अपरोक्ष ज्ञान :— अपरोक्ष ज्ञान दो प्रकार का है।

(१) दृढ़ (२) अदृढ़ ।

अदृढ़ अपरोक्ष ज्ञान सम्भावना और विपरीत भावना लेकर रहती है । सम्भावना और विपरीत भावना अज्ञान सम्बन्धी माया से प्रकट हुये हैं, अर्थात् माया की भावना है ज्ञान होने पर कुछ कचाई रहते अन्त समय में उदय होकर पुनर्जन्म लेते हैं, क्योंकि अन्त में अदृढ़ ज्ञान रहा । प्रमाणगत संशय रूप रहा और प्रमाणगत संशय से ही जीव और ईश्वर की कल्पना है । यही भेद विपरीत निश्चय है । सम्भावना के प्राप्त होने से ईश्वर जीव की कल्पना नहीं रहती ।

दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान :—महावाक्य के अर्थ का श्रवण, मनन, निदिध्यासन विचार के साथ जब दृढ़ होता है तब दृढ़ ब्रह्म ज्ञान होता है । तब अभानापादक आवरण और विक्षेप रूप माया निवृत्ति हो जाती है अर्थात् लयकार हो जाती है । तब पूर्ण ज्ञान हो जाता है । दृढ़ ज्ञान जो है वही पूर्ण ज्ञान है । ऐसा ब्रह्मविचार जिस अधिकारी को प्राप्त होगा । शास्त्रकारों के विचारों से उसी को ब्रह्म ज्ञान की जिज्ञासा होती है । वेद, गुरु अपना, अन्तःकरण, तीनों की योजना से निर्मल अन्तःकरण में यह विचार प्राप्त होता है । यहाँ विचार ब्रह्म स्वरूप है ।

कवित्त

आत्म ब्रह्म ज्ञानी ते न और दूजो ज्ञानी,
अहंग्रह ध्यान ते न और दूजो योग है ।
सत्य को समान ज्ञान माया को आधार जान
चेतन विशेष ज्ञान दृष्टा अधिष्ठान है ।
चेतन विवर्त्त अरु माया परिमाण मान जाता,
ज्ञान, ज्ञेय यह त्रिपुटी समाज है ।
रज्जु के प्रत्यक्ष काल आई जैसे रज्जु रूप
चेतन प्रत्यक्ष समय माया ब्रह्म रूप है ।

आत्मा स्वरूप सो तो सत् चित् आनन्द है,
कहें रघुवीर सोऽहंस्वयंप्रकाश है ।

चित्तवृत्ति

वायु चली वासना लइके साक्षी रूप चलाय रहा ।
देश देश की खबर मंगावे साक्षी रूप घुमाय रहा ॥
चित्तवृत्ति की वृत्ति ध्यावे देश देश को जावें ।
वायु रूप वासना लइके जीव को सकल घुमावें ॥
ज्योति रूप उजियार किया है वायु प्रेरि चलाई रहा ।
आनन्द रूप सकल प्रकाश तारा चक्र घुमाय रहा ॥
ऐसा चित्त रूप धारे माया करती हाहाकारा ।
आत्म द्वीप रूप के द्वारा सारा जगत पसारा ॥
ज्योति रूप को कर में लँके चित्त रूप बहकावें ।
करता भोक्ता जीव भोगावें चौरासी जन्मावें ॥
चित्तवृत्ति लयकार किया जे साक्षी रूप जे पाया है ।
समदर्शी आनन्द कहवावे सद्गुरु शरण जो आया है ॥

ब्रह्म ज्ञानी का लक्षण

बिहसि बिहंसि मुख मंद मंद करि ऐसा भाव बतावें ।
अज्ञानी यह भेद न पावें जिज्ञासु ललचावें ॥
अधिकारी का भेद बतावे सारा अंश दिखावें ।
पाप पुण्य हेरे नहि पावें कर्म काल जरि जावें ॥
अन्तःकरण कमल अस फूला दीप रूप प्रकाश किया ।
जिज्ञासु ब्रह्मज्ञानी होइगा अनुभव रूप आनन्द भया ॥
प्राण पकरि के चित्त को धरि के आपहि आप दिखाइ रहा ।
नाकहि आवे नाकहि जावे आपहि आप समाइ रहा ॥
पाँच प्राण का पंखा करिके आपहि बैठि चलाई रहा ।
अलख अरूप निरखि नहि आवे शब्द कहाँ से आय रहा ॥

(६४)

अलख अरूप निरखि नहि आवे ऐसा वेद बतावे ।
चलत फिरत बोलत आदित सब सद्गुरु अलख लखावे ॥
व्यापक ब्रह्म निरंजन ऐसा वेद पार नहि पावें ।
अनुभव दीप रूप प्रकाशा रामेश्वरानन्द बतावें ॥

क्रोध शान्ति का भगड़ा

क्रोध रूप जब खड़ा हुआ तब शान्ति रूप जा बैठी ।
दया धर्म कोमल चित्ता शान्ति ये सब पकड़ि के बैठी ॥
घटा घोर धन कार मचाया काली घटा किया है ।
आतम दीप रूप प्रकाशा क्षण में ढांप लिया है ॥
दया धर्म को पकड़ लिया तब शान्ति कुटुक से रोई ।
जो कोई हमरा लाल छुड़ावै पागल करौ मैं सोई ॥
ऐसा पागल करौ मैं गहि के आनन्द रूप धराऊँ ।
अन्तःकरण में ज्योति जलाऊँ काम को मारि भगाऊँ ॥
बिना कामना राज कराऊँ मणि अस रूप धराऊँ ।
दया धर्म का साथ पठाऊँ त्रिपुटी राज कराऊँ ॥
दया धर्म का खड्ग धराऊँ क्रोध को मारि गिराऊँ ।
अलख अरूप निरंजन ऐसा अन्तर्यामी लखाऊँ ॥
मोह खड़ा चित्ताय रहा तब लोभ कहा सुनु भैया ।

यह बात सुन कर

दया धर्म की करहु चाकरी सुनु मोरे वीर कन्हैया ॥
काम क्रोध लोभ मोह सब भये सिपाही ऐसे ।
दया धर्म की करहि चाकरी साक्षी रूप जाने से ॥
दया धर्म की करै दुहाई मोह कहा सुन भैया ।
अहंकार मोर पकड़ि गया है सब से जेठ कन्हैया ॥
अहंकार को चलो जगावें हमरी कटक सजै ।
पाँचो भाइ को पकड़ि भगाऊँ अपनी राज करै ॥

दया धर्म कह राज करै हम आनन्द रूप पकड़िके ।
 ओंकार का ध्यान पकड़ि के अहं का बांध भटकिके ॥
 काम क्रोधादि बोले...
 पाँचों भाई करै दुहाई कोउ नहि और सुनैया ।
 पिता हमारा पकड़ि गया है कौन मैं करौ उपैया ॥
 मातु हमारी पड़ी अकेली अहंकार डिंग बैठी ।
 पांव दवावे साक्षी धरिके अलख अरूप अनैठी है ॥
 शान्ति रूप की करै चाकरी दया की गोद खिलावै ।
 अनिर्वचनी माया कहवावे साक्षी ढांपि दवावै ॥
 शान्ति रूप का राज भया है सब कोइ बैठि रहो ।
 तमगुण हमरा उठै जो पावै सबका बाधि धरो ॥
 आच्छादन करि माया दौड़े आपन रूप पसारा है ।
 राज करै हम पाँचो भाई भ्रान्ति रूप कहवाया है ॥
 धर्म कहा तेरा राज लुटाऊँ भ्रान्ति को मारि गिराऊँ ।
 साक्षी ब्रह्म रूप प्रकाशों अन्तःकरण जलाऊँ ॥
 ज्ञान रूप प्रकाश करौ मैं भ्रान्ति रूप को जारा है ।
 राज करै हम पाँचों भाई अन्तर्यामी पाया है ॥
 क्रोध कहा सुन बात हमारी ऐसा राज करेंगे हम ।
 दया धर्म को पकड़ि गावै साक्षी रूप सम्भारि के हम ॥
 दया धर्म मेरो बड़े हैं भाई कोमल कह मुसकाई ।
 काम को पकड़ि के मैं धरि बैठे अलख अरूप समाई ॥
 लोभ कहा सुनु बात हमारी चित्त में रहै जो पाऊँ ।
 तुरत जगाऊँ अहंकार का साक्षी सकल छिपाऊँ ॥
 मोह कहा भैया तुम बैठो दया का राज कहाँ है ।
 अहंकार का राज भया है माता भ्रान्ति दिया है ॥
 धर्म कहा तेरे मातु पिता को ऐसा थाम लिया है ।
 जैसे राहु सूर्य को टापै वैसे बांध लिया है ॥

क्रोध कहा सुनु बात हमारी साक्षी पकड़ि जो पाऊँ ।
 मातु पिता का बन्दि छुड़ाऊँ काम का राज कराऊँ ॥
 शान्ति कहा सुनु बात हमारी अहंकार का हम पकड़ा ।
 अन्तःकरण जोति परकाशा काम क्रोध का गा भगड़ा ॥
 धर्म राज का पहरा धूमे तस्कर पकड़ि धरै ।
 यम के दूत कहाने वाले पकड़ि के बन्दि करै ॥
 तुम को यम के द्वार पठाऊँ फांस और बेंततुड़ाऊँ ।
 धर्म राज का राज कराऊँ यम का राज लुटाऊँ ॥
 राज हमारा भया अकंटक, साक्षी रूप धरेसे ।
 मातु हमारी मंगल गावे पिता का भास परेसे ॥
 अपने गुरु की चरण वृषा से ऐसा भेद बताया है ।
 शान्ति क्रोध का भगड़ा रुचि के साक्षी रूप जनाया है ।

प्राण का खेल

प्राण कहाँ मैं आऊँ जाऊँ आपन रूप न जानो ।
 साक्षी रूप भुलावे धरिके कह तक भेद बखानो ।
 व्यान कहाँ मैं सकल बताऊँ भेद अभेद न जानो ।
 जाननहारा सबसे न्यारा व्यापक ब्रह्म बखानी ॥
 आपन कहाँ हम कहं तक वरणो जड़ अस रूप भयेसे ।
 जो कुछ पाऊँ मैं धरि आऊँ अन्तःकरण परेसे ॥
 समान कहाँ मैं चेतन धरि के व्यापक रूप भयो ।
 नाड़ी नाड़ी सकल दौरि के जल अरु अन्नधरों ।
 उदान कहाँ मैं गीज निकारों जल का मेल बहाऊँ ।
 मैदा थैली भारि पोंछि के मेस्तर रूप कहाऊँ ॥
 अन्न जल का मैं पाक किया जब अग्नि प्रवेश करे से ।
 नाम उदान रूप कहवाऊँ चेतन रूप धरे से ॥
 प्राण कहाँ भैया तुम देखो ऐसी खेल हमारी ।

गेंदा ऐसा खेल खेलाऊँ चेतन रूप बिहारी ॥
 चेतन रूप अखण्ड हमारा बारह अंगुल धावै ।
 हमका छोड़ि अलख होइ जावैं अन्तर्यामि कहावैं ॥
 अपान कहा मैं साक्षी धरिके ऐसा दौड़ लगाऊँ ।
 अन्न जल को पकड़ि जब पाऊँ अन्तःकरण बहाऊँ ॥
 उदान कहा मैं उदर में बसि के ऐसा खेल करौं ।
 साक्षी रूप पकड़ि धरि भूलों सुन्नाकार रहौं ॥
 प्राण कहा मैं व्यापक रूप को ऐसा खेल कराते हैं ।
 सकल वासना लइके धाऊँ सुख दुख भोग भोगाते हैं ॥
 अपान कहा तुम मिथ्या कहने झूठी बात न जाने हम ।
 साक्षी रूप पकरि हम पाया अन्तःकरण समाने हम ॥
 व्यान कहा तुम जड़ कहवाया सारा भेद बतावैं हम ।
 व्यापमान पूरण हम पाया, रोम-रोम बतलावैं हम ॥
 समान कहा तुम सबकोइवैओ ऐसी बात न माने हम ।
 व्यापमान पूर्ण धरि पायेंउ साक्षी रूप समाने हम ॥
 उदान कहा तुम बैठि रहो हम ऐसी बात बताते हैं ।
 अन्तर्यामी साक्षी न्यारा व्यापक रूप जनाने हैं ॥
 पाँच प्राण का टूटा भगड़ा जड़ अस रूप भये ।
 चेतन छोड़ि अलक्ष भया है कह सिया राम भले ॥

मन बुद्धि का भगड़ा

अन्तःकरण में पिता हमारा माता साथ लिये हैं ।
 चार पुत्र हम मात पिता के सारा राज दिये है ॥
 मन राजा गद्दी पर बैठा बुद्धि को साथ लिये है ।
 चित्त खड़ा बलवंत बड़ा अहंकार को साथ किये है ॥
 मन बोला हम राज करें तुम हमरा बनो सिपाही ।
 राज करे हम आनन्द होइके हमरी करौ दुहाई ॥

बुद्धि कहा हम बात न माने एक अनेक बनावें ।
 सारा काज करें हम दीड़े राजा तुमहि बनावें ॥
 चित्त बोला —

हमराज करें सब न्याय चुकावें सब कोइ बैठि रहो ।
 साक्षी रूप राज मैं करिहौं अन्तःकरण रही ॥
 अहंकार कह राज हमारा सबका मारि गिराऊं ।
 जन्म-जन्म से परलय करते बादशाह कहवाऊं ॥
 अहंकार घन घोर मचाऊं क्षण में सब लै करते हैं ।
 शुभाकार रूप कहवाऊं आनन रूप विहरते हैं ॥
 संचित कर्म अगामी दोनों प्रारब्ध लय जन्माया ।
 करता भोक्ता जीव बनाया चौरासी में भटकाया ॥
 ऐसा राज किया हम भारी कह तक भेद बतावे ।
 ईश्वर जीव की कौन चलावे माया पार न पावे ॥
 मन कहा राज हमारा ऐसा तुमको पकड़ि मगाऊं ।
 सकल वासना लय के धाऊं जीव को मैं भटकाऊं ॥
 चेतन रूप अलख अविनाशी तिसके साथ रहौं ।
 अन्तःकरण कमल के मध्ये अनुभव राज करौं ॥
 अन्तःकरण निर्पल जब होवे चेतन रूप दिखाऊं ।
 लख चौरासी यम की फांसी क्षण में भस्म कराऊं ॥
 अन्तःकरण मलिन भये से ऐसा जाल बनाया है ।
 जैसे मकड़ी जाल बनावे जीव को पकड़ि बँधाया है ॥
 ऐसा जाल बनाया हमने चेतन रूप धरे से ।
 अहंकार की कौन चलावे साक्षी रूप गहे से ॥
 बुद्धि कहा हम बात न मानें झूठ बहुत तुम कहते हो ।
 अन्तर्यामी साक्षी न्यारा कैसी बात तुम कहते हो ॥
 हम साक्षी का पाया अन्दर एक अनेक बनाया है ।
 सारी सृष्टि किया हम रचि के दीपक रूप जलाया है ॥

चित्त कहा तुम जड़ कहवाया हम साक्षी धरि पाया है ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती तीनों जोति रूप दरशाया है ॥
अहंकार कह बात न माने चारों जड़ कहवाया ।
अलख अरूप निरंजन ऐसा माया हमहि बनाया है ॥
मातु पिता का नाम न जानौ जड़अस रूप भये से ।
चेतन रूप जोति प्रकाशे अन्तःकरण परेसे ॥
मन कह जब हम उदय भयेतव जोति रूप दर्शयिदिया ।
अन्तःकरण कमल के मध्ये आनन्द रूप लखाय दिया ॥
बुद्धि कहा हम करता धरता साक्षी रूप लखाया है ।
व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी एक अनेक बनाया है ॥
चित्त कहा हम जोत जलाया अन्तःकरण प्रकाश किया ।
कमल रूप पर मान पड़ा जब साक्षी रूप लखाय दिया ॥
अहंकार कह बात सुनो तुम आपन रूप बताते हैं ।
भान रूप आनन्द प्रकाशा सुनाकार कहाते हैं ॥
सुनाकार अहै आकाशा जड़ अस रूप कहा है ।
वेद शास्त्र की वाक्य यही है माया शब्द किया है ॥
माया चेतन रूप पकड़ि के शब्द रूप कहलाती है ॥
अन्तःकरण कमल के मध्ये साक्षी रूप जनाती है ॥
आतम रूप अलक्ष सही सत् चित्त कहाय आनन्द हुआ ।
इस नाम को जानन हार वही जिसके कर्म बीज का नाश हुआ ॥
योगाभ्यास किया जिसने तिसके कर्म बीज का नाश हुआ ।
आतम दीप स्वरूप यही सतरूप स्वरूप आनन्द हुआ ॥
जानव ऐसा रूप बतावे सतगुरु प्राण पियाग ।
जिज्ञासु का भ्रम छुड़ावे अनुभव रूप दुवारा ॥
अनुभव रूप दुवारा नाचै माया भंभत कारा ।
मन बुद्धि चित् का साथ लिये है साक्षी रूप दुवारा ॥

अहंकार भगड़ा सब तोड़ा सुन्ना कार भया ।
 एक अखण्ड सच्चिदानन्द सियाराम पकड़ा ॥
 श्री राधे श्याम गुरु जब पाया ऐसा खेल दिखाया ।
 जब मैं आया सब कुछ पाया आपहि आप समाया ॥

वायु का खेल

साक्षी रूप पकड़ि जब पाया वायु धाय चली है ।
 करता धरता चित्त किया है साक्षी रूप लिही है ॥
 भन-भन-भन-भन शब्द मचावेवोऽहम् सोऽहम् गाया है ।
 विजली तड़के आनन्द बरसै भान रूप दर्शाया है ॥
 सात कोटि नाड़ी में धावै ऐसा खेल मचावे ।
 वोऽहम् सोऽहम् शब्द सुनावै आनन्द मंगल गावै ॥
 प्राण पकरि के भूलि रहा हैं आनन्द सत् चित् रूपा ।
 अन्तर्यामी साक्षी न्यारा वायु मध्य अनूपा ॥
 अन्तःकरण वासना लँके वायु पेर चलाइ रहा ।
 अलख अरूप निरंजन ऐसा अनहद शब्द बजाइ रहा ॥
 वायु रूप धरा है ऐसा भान रूप होइ करिके ।
 महा तत्त्व धारण जब कीना अन्तर्यामी होइके ॥
 अन्तःकरण चमकि चित करिये साक्षी अन्दर होइके ।
 वायु पेर चलाइ रहा है महाकाश में रहिके ॥
 चेतन रूप पकड़ि जब खँचे ऐसा दौड़ि चलै ।
 ब्रह्मा से चींटी तक लइके साक्षी रूप रहै ॥
 सूर्य चन्द्र का दीप बनाया तारा चक्र चलाय रहै ।
 अलख अरूप निरखिनहि आवेऐसा खेल मचाइ रहा ॥
 सब जीवन में करता धरता वायु खेल दिखावे ।
 ना कहूँ आवे ना कहूँजावे अलख जोति दरशावे ॥

तारा जोति सकल प्रकाशै सरगुन रूप दिखाया है ।
 वायु छोड़ि निरंजन होइगा अलख अरूप कहाया है ॥
 तीन कर्म का भस्म किया जे वायु पेरि निरंजन है ।
 सत्गुरु की चरणन कृपा से आनन्द द्वैन्द निकंदन है ॥
 वायु पेर चमक दरशावे अलख रूप होइ जावे ।
 ऐसा रूप देखि जे पावे आनन्द मंगल गावें ॥
 अलख अरूप निरंजन होइगा, अनुभव दीक्षा सरूप हुआ ।
 जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया साक्षी रूप अनूप हुआ ॥
 प्राण मध्य में वास किया है आनन्द सत् चित् रूपा ।
 दोनों रूपा अलख अरूपा कहैं सियाराम अनूपा ॥
 अलख अरूप निरंजन ऐसा महाकाश जब धारा है ।
 महाकाश से घटा काश भा अन्तःकरण सिधारा है ॥
 भान रूप जब भास किया तब अन्तःकरण प्रकाश हुआ ।
 मन बुद्धि चित् अहंकार बनाया इच्छा रूप से खेल किया ॥
 इच्छा चेतन रूप पकड़ि के सारी सृष्टि बनाया हैं ।
 चित् रूप चैतन्य दिखावे अनिर्वचनी कहवाया है ॥
 मन दीप रूप प्रकाश किया जब जोति रूप उजियार हुआ ।
 अन्तःकरण कमल के मध्ये अलख अरूप प्रकाश हुआ ॥
 घट फूटि गया तब अलख हुआ तब भान रूप दिखलाय नहीं
 व्यापक पूरण अलख निरंजन सुन्नाकार अकार नहीं ॥
 आपहि भासक भया आनन्द से आपहि अलख भया ।
 चारों वेद पुकारि कहैं हम भासक ब्रह्म से आप भया ॥
 वायु कहैं मैं जड़ कहवाऊँ महाकाश में रहते हैं ।
 साक्षी रूप पकड़ि धरि पायेउँ आनन्द रूप बिहरते हैं ॥
 साक्षी रूप पकड़ि धरि पाया चित्त रूप दरशाया ।
 चम चम रूप जोति परकाशों अलख अरूप जनाया ॥

राधे श्याम गुरु अस पाया प्राण पकड़ि के भुलते हैं ।
अन्तर्यामी साक्षी पाया आनन्द रूप विहरते हैं ॥

ईश्वर जीव का भगड़ा

अलख अरूप निरंजन ऐसा भासक रूप भया है जब ।
चमक रूप माया धरि बैठी ईश्वर जीव किया है तब ॥
ईश्वर चेतन रूप भया जब माया पकड़ि धरे से ।
जोत रूप आनन्द दरशाये अन्तःकरण परे से ॥
ईश्वर चेतन रूप कहावे माया पकड़ि रचे ।
ऐसी सृष्टी रचइ आनन्द से कहँ तक वेद कहै ॥
ईश्वर जीव भये जो भाई भगड़ा दिया मचाई ।
जीव कहा हम सुख दुख भोगे राजा तुमहि बनाई ॥
पहले जन्म भया है हमरा सतगुण रूप भये से ।
दूसरा जन्म भया है तुम्हरा हमरा बिम्ब पड़े से ॥
रज तम गुण में आप पड़े हैं माया पकड़ि धरी है ।
चौरासी में फेर घुमावे अग्ने गोद लिही है ॥
हम राजा आनन्द से बैठे बादशह कहवावें ।
तुमका चौरासी घुमवावें भटक भटक जन्मावें ॥
हम माया का हुकुम दिया है ऐसा जाल बनाया है ।
जैसे मकरी तार लगावे मच्छर पकड़ि के खाया है ॥
माया पकड़ि घुमावे तुमका चौरासी जन्माय रही ।
हम तो साक्षी अलख निरंजन चौरासी से पार सही ॥
चित्त रूप में पकड़ि घुमाऊँ ऐसा खेल खेलाऊँ ।
आपन रूप लखै न पइहो माया से नचवाऊँ ॥
दीप रूप प्रकाश हमारा माया नाचि रही है ।

भास रूप हम साक्षी देखे तुमका गोद लिही है ॥
 जीव नहीं हम ब्रह्म सही है अलख अरूप अनूपा है ।
 घटा काश में हम बैठे है, आनन्द दीप सरूपा है ॥
 प्राण पकड़ि के चित में रहिके ऐसा खेल मचाया है ।
 ज्ञानी समुक्ति शान्ति है बैठे मूर्ख को ललचाया है ॥
 तुमको करता माया करिके चौरासी दरशाय रहे ।
 अलख अरूप निरंजन होइके हम आनन्द सुख भोग रहे ॥
 जीव वैरी माया में फँस के हमसे बैर बढ़ाया है ।
 माया में फँसि सुख दुःख भोगे साक्षी लखै न पाया है ॥
 जन्म-जन्म की कर्म वासना चौरासी ले जाती है ।
 कूकर सूकर जन्म दिवाती भटकि पटकि जन्माती है ॥
जीव—घटा काश में हम बैठे हैं वायु पेर चलाते हैं ।
 वायु पेरि चमकि चित् करके अनहद शब्द बजाते हैं ॥
 प्राण पकड़ि के चित में रहिके ऐसा खेल मचाया है ।
 ज्ञानी समुक्ति शान्त होइ बैठे मूर्ख लखै न पाया है ॥
ईश्वर—अलख अरूप निरंजन होइके ऐसा खेल किया है ।
 चौरासी अस फेर किया है जीव का जन्म दिया है ॥
जीव—तुम तो करता माया करिके ईश्वर रूप कहाया है ।
 हम अन्दर साक्षी होइ करके आनन्द खेल मचाया है ।
 जो कोइ मन का बांधि लिया है चित्त में बैठि प्रकाश किया ।
 अलख अरूप निरंजन ऐसा जोत रूप दरशाय दिया ॥
ईश्वर—जीव वैरी माया में फँसिके हमसे बैर किया है ।
 भास रूप प्रकाश किया जब जीव का जन्म दिया है ॥
 चौरासी में फेर घुमाऊँ आपन बाँध लिया है ।
 माया खँचि अलख होइ करके आपहि आप भया है ॥
 जीव कहा हम अलख निरंजन व्यापक ब्रह्म सही है ।
 सूर्य चन्द्र तारा को लेकर वायु पेर धरी है ॥

वायु पेर अलख होइ करके ऐसा चक्र घुमाया है ।
 जोत रूप साक्षी होइ बैठे एक अनेक दिखाया है ॥
 जीव माया में पकड़ि गया है चौरासी में भटकावें ।
 कर अकंटक राज आनन्द से दश इन्द्रिय को चमकावे ॥
 मन को मारि गिराऊँ ऐसा भान रूप उजियार करूँ ।
 दस इन्द्रिय के दस दरवाजा, साक्षी रूप मैं राज करूँ ॥
 मन को जिसने जीत लिया है साक्षी अन्दर आप हुआ ।
 अलख अरूप निरंजन ऐसा आनन्द रूप सरूप हुआ ॥
 कहा न मानों ईश्वर का कोई ऐसा रूप धराऊँ मैं ।
 अन्तःकरण में ज्योति जलाऊँ ईश्वर भेद मिटाऊँ मैं ॥
 ईश्वर माया रूप कहावे करता रूप सही है ।
 हम आनन्द से राज करेंगे व्यापक ब्रह्म सही है ॥
 माया अन्दर हम बैठे हैं भासक रूप भये हैं ।
 अलख अरूप निरंजन हमही जोत सरूप भये हैं ॥
 लख चौरासी जोति प्रकाशों माया अन्दर बैठि रहैं ।
 वायु धरि चमकाऊँ अन्दर अलख अरूप सरूप रहैं ॥
 जो कोई मन का मारि गिरावे चारि पदार्थ हम देवें ।
 अलख अरूप निरंजन ऐसा भान रूप हम दरशावें ॥
 जो कोई चित्तको धरि पाया है भान रूप दरशाया है ।
 मन जानव अस रूप धरा है अलख अरूप जनाया है ॥
 संत दरस जे पाया रहि के सतगुरु भेद बताया है ।
 करि उपासना भ्रम छोड़ि के आपहि आप समाया है ॥
 जीव ईश्वर माया की भगड़ा जो कोई निश्चय मानेगा ।
 सियाराम का यही वाक्य है आत्म रूप वही जानेगा ॥

— — —

तत्त्व विवेक .

सुषुम्नयाह सदा गोष्ठि यः कश्चित् कुरुते नरः ।
 समुक्तः सर्वं पापेभ्यो निः श्रयः समवाप्तयात् ॥
 सुषुम्नैव परं तीर्थं सुषुम्नैव परः जपः ।
 सुषुम्नैव परं ध्यानं सुषुम्नैव परागतिः ॥
 अनेक यज्ञ दानानि व्रतानि नियमास्तथा ।
 सुषुम्नाध्यान योगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
 मायाशक्तिर्ललाटाग्र भागे व्योमाम्बुजे तथा ।
 नादरूपापराशक्तिर्ललाटस्य तु मध्यमे ॥
 भागे बिन्दुमयि शक्तिर्ललाटस्य परांशके ।
 बिन्दु मध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते ॥
 हृदय स्थूल रूपेण मध्यमे न तु मध्यमे ।
 प्राणापान वशो जीवो हृदयोऽचोर्ध्वं च धावते ॥
 हकारेण वहिर्याति सकारेण वसेत्पुनः ।
 हंस हंसे त्वमं मंत्रं जीवो जयति सर्वदा ॥
 त्रयोः कालास्त्रयो देवास्त्रयो लोकास्त्रयः सुरः ।
 त्रयोः वेदाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरो मितिः ॥
 सत्गुरो वाक्य सिद्धांतः वेद शास्त्र प्रमाणिकः ।
 योग युक्ति समाधिश्चितते जानहि वहि जानिकाः ॥
 आत्मा अनुभव रूप है, स्वयं प्रकाश स्वरूप ।
 चित् चंचल वहि छलत है, जानहु बहू अरूप ॥
 अहै अरूप रूप हूँ भासै कला अनेक दिखावै ।
 बिन जाने संसार जनावै जाने अलख कहावै ॥
 चारि अवस्था भाषित करिके बिलग-बिलग बतलाता है ।
 ऐसा खेल रचै पल-पल में आपहि आप जनाता है ॥
 क्रिया कर्म करता चित् करिके भव सागर की रचना कीन्ह ।
 चित् को पकरि खेल जब नाशाहि तब भावै रहिजानन चीन्ह ॥

चार योनि चौरासी करिके जीव को वही खिलीना दीन्ह ।
 जनमत मरत सुख-दुख भोगे अलख निरंजन साक्षी तीर ॥
 नाद बिन्दु के मध्य विराजै अणु प्रमाण अखण्ड स्वरूप ।
 असं जोति प्रकाश होत तहं अलख निरंजन आप अनूप ॥
 अनहद शब्द तहाँ पर बाजै चमक रूप मन करता है ।
 जे जाने वहि चमक रूप को आपहि आप समझता है ॥
 वेद शास्त्र का पाठ करै प्राणायाम करै चाहे नित्य ।
 बिना गुरु कोई भेद न पावे कथन करै चाहे ज्ञान का नित्य ॥
 ब्रह्मा से चींटी तक लइके एक रूप हैं रहते हैं ।
 ज्ञानी समुझि मौन हैं बैठे जिज्ञासु से कहते हैं ॥
 जीवन मुक्त जानव तक जानों क्रिया कर्म लयकार भयो ।
 भासमान का बोध मयो तब अलख निरंजन रूप भयो ॥
 कहत सुनत समुझन सब जानै इन्द्रिय विषय न माने ।
 स्वयं जोति प्रकाश रूप को अलख निरंजन जाने ॥
 पाँच तत्व का पिंडा रचि के भीतर मनुष्य रूप हुये ।
 बुधिकरता चित जनता रचि के अजब खेल अनुरूप हुये ॥
 यही खेल ब्रह्मा में जानी यही खेल विष्णु में होय ।
 यही खेल श्रीराम कृष्ण में यही खेल अपने में होय ॥
 यही खेल जनता चित करिके सूर्य चन्द्र में भास रहा ।
 सूर्य में गर्मी चन्द्र में शीतल अजब खिलारी खेल रहा ॥
 षट् चक्र के मध्य में, तिलाभास तहं होय ।
 तहाँ खेल नित होत है, सद्गुरु जनाये मोय ॥
 अणु समान के बूंद में सारी सृष्टि भरी है ।
 जलचर थलचर अण्डज पिण्डज विलग २ अनुरूप करी है ॥
 एहि निर्गुण यहि सगुण जानों विलग न मानो कोई ।
 अलग विलग का त्याग किये ते जगत निरंजन आप सोई ॥

जगत निरञ्जन आप है, आपै आप समाय ।
 कहने में आवै नहीं, आपै आप जनाय ॥
 मन निर्मल के होन ही, अनुभव उठे अखण्ड ।
 यही रूप अनुरूप है, कहैं रामेश्वरानन्द ॥
 सात कोटि नाड़ी के अन्दर चमक रूप मन करता है ।
 प्राण अपान ध्यान पर आपै चलत समझता है ॥
 सात कोटि नाड़ी के अन्दर अणु समान हैं व्यापि रहा ।
 अन्न जल कर सत्ता लै करिके रोम-रोम सींच रहा ॥
 इंगला पिंगला के मध्य में, सुखमन खाट विछाय ।
 आप सम्हल के बैठि के, दीपक देय जलाय ॥
 अंस जोति प्रकाश होत तहं भूला भूलत रहै निरंतर ।
 चमक भिलमिल दामिनिदमके शब्द अनाहद पिये निरंतर ॥
 अनहद वाजा वाजि रहा और अमृत धारा वर्षि रहा ।
 बिना बिजुली बिन्दु बादल गरजे चमक-चमक दरशाय रहा ॥
 तेज बिन्दु के मध्य में, अंस जोति प्रकाश ।
 ब्रह्मा विष्णु महेश आदि लै, सूर्य चन्द्र दरशात् ॥

— — —

जीवन मुक्त का लक्षण

ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होने से बाह्य विषयों का त्याग आपसे आप हो जाता है। भोक्ता भोग्य, भोग वालक के समान स्तुति निन्दा की कोई गम नहीं ऐसा ब्रह्म ज्ञानी भोग करता अपने में आनन्द रहता है।

जो अधिकारी अर्थात् यती क्रिया से रहित हो करके ऐसे आनन्द में रहता है उसको स्थित प्रज्ञ कहा जाता है।

‘तत्त्वमसि’ महावाक्यों से शोभित जीवात्मा और ब्रह्म में विकल्प से रहित बुद्धि एकाग्र भाव को अवगाहन करने वाली जो चेतन मात्र वृत्ति

है उसी का नाम प्रज्ञा है। जीव ब्रह्म का एकाग्र भाव को प्राप्त करने वाली चेतन मात्र प्रज्ञा जिसकी स्थिर है वही पुरुष स्थित प्रज्ञ कहलाता है। और वही पुरुष निरंतर आनन्द भोग करता है। प्रपञ्च जगत् जिसका विस्मृत हो गया, वहीं जीवन युक्त कहलाता है। बुद्धि को ब्रह्म लीन करने पर भी जिस मनुष्य का जाग्रत धर्म से वर्जित अर्थात् संसार क्रिया से रहित है वही पुरुष आत्मा रूपी जाग्रत में जाग्रत स्वरूप होता है। वही वासना से रहित और जीवन मुक्त है। अर्थात् संसार भावना शान्त हो गई। आत्म कल्पना युक्त होने से भी वह निष्कल कहलाता है। वही पुरुष शान्ति स्वरूप है और वही जीवन मुक्त है। प्रारब्ध कर्म के अनुसार शरीर वर्तमान रहते भी जिसका अहंकार और ममता छाया के सदृश हो गया अर्थात् शरीर के व्यवहार रहते क्षीण स्वरूप है वही पुरुष जीवनमुक्त है। बीती हुई वस्तुओं का पाश्चाताप न करना, होने वाली वस्तुओं की प्रतीक्षा भी नहीं करना, प्राप्त वस्तु में उदासीनवत् रहना यही जीवन मुक्त पुरुष का लक्षण है।

गुण-दोष संयुक्त और स्वभाव से विलक्षण ऐसा जो संसार है, इसमें समदृष्टि रखना जीवन मुक्त का लक्षण है। इष्ट वस्तु को प्राप्त होने में चित्त में उद्वेग न होना अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति में खेद न होना दोनों अवस्था में सम रहना, आत्मा में कोई तरह का विकार न होना यही जीवन मुक्त का लक्षण है।

ब्रह्म रूपी आत्मा में असक्त चित्त होने से बाह्य विषय और आन्तरिक यह दोनों लयकार हो जाते हैं। केवल एक ब्रह्मानन्द रस ही में लीन होता है। जीवन मुक्त का यही लक्षण है।

श्रुतियों के प्रमाण और गुरु के उपदेश में भरपूर ब्रह्म भाव जिसका स्थिति हुआ अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता हुई। वही पुरुष भव बन्धन से निर्मुक्त होकर जीवन मुक्त कहा जाता है।

सर्वत्र व्यापक रूप ब्रह्म से और ब्रह्मा की सृष्टि से कभी भेद नहीं है और न होगा। ऐसा जो ज्ञान है, वही पुरुष जीवन मुक्त है।

भक्तों की पूजा से और दुर्जनों की निन्दा से जिस मनुष्य का अन्तः-करण समभाव को प्राप्त हो गया है अर्थात् वह उद्वेग को कभी नहीं प्राप्त हो सकता है। वही पुरुष जीवन मुक्त है।

जैसे नदियों का जल समुद्र में जाकर समा जाता है। और समुद्र में घटाव-बढ़ाव नहीं होता वह समभाव ही रहता है। तसे इन्द्रिय विषय रूपी जल लेकर आत्मा रूपी समुद्र में एकत्र हो जाती है। ऐसा पुरुष जीवन मुक्त है।

जिस पुरुष ने ब्रह्म तत्त्व को जान लिया, उस पुरुष को पूर्व काल सदृश फिर संसार भावना नहीं होती यदि वह ब्रह्म ज्ञानी पुरुष बहिर्मुख न हो तो अर्थात् चित्त को बाह्य विषयों में आसक्ति न करे तो।

यदि कोई शंका करे कि वासना के वेग से ब्रह्म ज्ञानी पुरुष को भी संसार की भावना हो सकती है तो फिर ऐसा नहीं हो सकता। ब्रह्म ज्ञान का एकत्र ज्ञान होने से वासना क्षीण हो जाती है। विशेष दृष्टि से धर्मपत्नि अपनी धर्म पत्नी जानता है और वासना की प्रबलता धर्म पत्नी में होती है अर्थात् माता और बहिन में नहीं होती। वैसे पूर्णानन्द ब्रह्म का ज्ञान होने पर पूर्व वासना कुण्ठित हो जाती है अर्थात् निरवासना हो जाते हैं।

प्रारब्ध कर्म का फल देखने से ज्ञान होता है और श्रुति भी कहती है कि निदिध्यासन शील अर्थात् आत्म वस्तु का विचार करने वाला यति पुरुषों के अन्तःकरण में प्रतीत बनी रहती है वही प्रतीत रूपी वासना प्रारब्ध है और जब तक सुख का अनुभव रहता है तब तक प्रारब्ध कर्म बना रहता है। क्रिया करने से फलदायक होता है बिना क्रिया के सिद्धि नहीं होती। भोग पूरा होने पर जरा बीज वत् समाप्त होता है और केवल भोग मात्र है जन्म देने वाला नहीं।

‘मैं ब्रह्म हूँ’ ऐसा ज्ञान होने से फिर करोड़ों कल्प के अर्जित अर्थात् संचित कर्म लय को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सोने के बाद जागने पर स्वप्नावस्था। जैसे स्वप्नावस्था में पुण्य और पाप जागने पर न स्वर्ग है और न नर्क है। तैसे कर्म का फल ब्रह्मज्ञान होने पर कुछ भी नहीं है।

जैसे आकाश किसी वस्तु में असत नहीं है सब वस्तुओं में वह उदासीनवत् व्याप्त रहता है वैसे ब्रह्म ज्ञानी संग रहित उदासीनवत् भावी कर्म में लिपायामान नहीं होता क्योंकि भावी कर्म संचित कर्म का सम्बन्धी नहीं है और संचित कर्म ज्ञानाग्नि द्वारा भस्म हो जाता है ।

जैसे घर के संयोग होने से आकाश घटस्थ मध्य के सम्बन्ध से लिपायमान नहीं है तैसे नाना तरह का उपाधि होने से आत्मा उपाधि धर्म रहित है । ज्ञान होने के पहले जो कर्म किया गया । वह कर्म बिना अपना फल दिये सामान्य ज्ञान से नष्ट नहीं होता । जैसे किसी एक लक्ष पर वाण छोड़ा जाय तो वाण बिना लक्ष्य वेध किये मध्य में नहीं रुकता । व्याघ्र बुद्धि से वाण छोड़ा गया पश्चात् व्याघ्र बुद्धि गो बुद्धि होने से वह वाण मध्य में नहीं रुकता । लक्ष का घात करता ही है । तैसे अज्ञान दशा में जो कर्म किया गया वह सामान्य ज्ञान दशा में भोगना पड़ता है । ब्रह्मा से चीटी तक ले करके और ब्रह्ममय होकर जो पुरुष सदा स्थित रहता है उन ब्रह्म ज्ञानियों का समस्त कर्म नष्ट हो जाता है अर्थात् लयकार हो जाता है , वह निर्गुण ब्रह्म ही है । ऐसे ब्रह्म ज्ञानी पुरुष प्रतिभास रूप अर्थात् इस देह में अहं बुद्धि नहीं रखते । इस देह में उपकार जितना विषय प्रपंच हैं ऐसी बुद्धि को छोड़कर केवल आत्म स्वरूप में जागरण करते हैं ।

विषयों की इच्छा जब ब्रह्म ज्ञानी पुरुष को नहीं रहती तों जगत का संग्रह भी नहीं दिखाता । यदि मिथ्या पदार्थों में अनुरक्त न हो ऐसे ब्रह्म में वर्तमान होकर आत्म स्वरूप में जो सदा स्थिर है उसको ब्रह्म से भिन्न दूसरा कुछ नहीं दिखाता क्योंकि ब्रह्म मयी बोध हो गया है ।

— — —

आत्मा की संसार से विलक्षणता

(पंचकोश वर्णन)

प्रबल अविद्या नाश करै जे, विवेक विराग खंगलइके ।
शान्ति चित्तटेम असराखे, सद्गुरु वचन सम्हारि धरिके ॥
श्रद्धा करै जे वेद शास्त्र में, बुद्धि प्रकाश करै ।
प्रबल अविद्या नाश किया, ते ब्रह्म स्वरूप धरै ॥
निर्मल बुद्धि किया है जिसने, आत्म रूप पहिचान लिया ।
मूला वर्ण तूला विक्षेप चौरासी भस्म किया ॥
ईश्वर की शक्ति सोइ माया करै अनेक विलक्षण ।
पाँचकोश आच्छादन करिके करै अनेक विलक्षण ॥
ईश्वर का परकाश मिटावे, आपन रूप दिखावे ।
पाँ कोश का भेद बतावे ईश्वर शक्ति कहावे ॥
सूर्य रूप जब ज्ञान प्रकाशै, माया सकल विनाशै ।
पाँचकोश में भास दिखावे, अलख अरूप कहावै ॥
जगत् बंध से पार भया जे, वहि विद्वान कहावे ।
करै विवेक अनित्य मिटावे, ज्ञानी ब्रह्म कहावे ॥
निर्मल बुद्धि अनित्य को नाशै, आत्म रूप प्रकाश करै ।
ब्रह्म रूप में स्थित करिके, देहाध्यास को नाश करै ।
अन्न से उत्पति देह सही है, पाँचकोश आदिक लइके ।
चेतन रूप प्रकाश करे हैं, पाँचकोश आदिक रहिके ॥
जो कोइ ममता त्याग करे है, जाति वर्ण आदिक लइके ।
साक्षी रूप निरन्तर पाया, जानब ब्रह्म पकड़ि धरिके ॥
जो कोइ ममता करै देह में, जाति वर्ण आदिक लइके ।
चेतन रूप स्वरूप नचावै, वेद शास्त्र कथनी करिके ॥

(११२)

त्वचा चर्म और मांस रुधिर से अस्थि आदि से पूरण है ।
 चेतन रूप कभी नाहि पावे, जाति वर्ण जे माने है ॥
 पहिले देह दिखाय नहीं, जब जन्म भया तब देह भई ।
 नाश अनित्य विकार सही है, संचित कर्म से प्रकट भई ॥
 चेतन के प्रकाश करने से, देह अनित्य दिखाती है ।
 पाँचकोश आदिक सब भासै, नाश अनित्य विकारी है ॥
 चेतन के परकाश परे ते सत्यहि सत्य दिखावे ।
 जाति वर्ण आश्रम बतलावे, अनिर्वचनी कहलावे ॥
 कर्म धर्म और देह आदि, लै जाति वर्ण तक लइके ।
 चारि अवस्था चारि कल्प तक सात लोक तक लइके ॥
 चौदह भुवन और सात दीप लै, वेद शास्त्र तक लइके ।
 चेतन ब्रह्म प्रकाश किया है, इच्छा रूप पकड़ि के ॥
 जितनी वस्तु बताय गये हम, माया रूप सही है ।
 इनका चेतन करने हारा अलख अरूप वही है ॥
 हाथ पाँव के भंग भयेते जीता, रहत सही है ।
 हाय हाय करि कहर मचावे माया रूप वही है ॥
 आपमें आप प्रकाश दिखावे अन्तर्यामी होइके ।
 जिसने पूरा भजन किया है पाया अन्दर गहिके ॥
 पाप पुन्य से रहित वही है, साक्षी पकड़ि जे पाया है ।
 जन्म मरण से रहित भया है, अलख अरूप कहाया है ॥
 त्वचा मांस मज्जा आदिक लै यह शरीर भरि पूरण है ।
 इसका साक्षी अलख निरंजन सबसे रहित त्रिलक्षण है ॥
 अहं बुद्धि के करने हारे इसका मर्म न जानै ।
 जिसने जाना आत्म रूप को ईश्वर जीव न मानै ॥
 अनित्य वस्तु में अहं किया, माया चपरि दबाव ।
 जिसने जाना आत्म रूप को माया जीव न भावै ॥

जिसने अहं बुद्धि नहि त्यागा षट् शास्त्री पंडित जो होय ।
 लेश मात्र भक्ति नहि आवै, जीवन मुक्त कहाँ ते होय ॥
 वेद शास्त्र का सार जे जाना निष्कामी वही कीय करम ।
 जीवन मुक्त हुआ आनन्द से, परमार्थ का यही धरम ॥
 दर्पण में जब बिम्ब दिखावे, उसमें ममता होय नहीं ।
 ममता करै मूढ़ वहि जानों, भ्रान्ति रूप में पड़ा वही ॥
 जन्म मरण में परा वही है, आत्म बुद्धि जो त्यागा है ।
 बुद्धिमान हरिमाण वही है, साक्षी रूप जे धारा है ।
 कर्मेन्द्रिय और बचन आदि लै प्राण वायु तक लइके ।
 प्राण कोश कहवावै निश्चय, यह जानों चित धारिके ।
 भूख जहाँ से प्रकट होतु है, अन्न मय कोश वही है ।
 साक्षी प्राण मुक्त होने से, क्रिया प्रत्यक्ष करी है ॥
 अन्तःकरण वासना लइके, वायु पकड़ि चलावै ।
 प्राण कोश कहवावै जानों आवागमन मचावै ॥
 इष्ट अनिष्ट विचार न जानै, मूढ़ कुबुद्धि वही है ।
 बुद्धिमान प्रमाण वही जो साक्षी रूप धरी है ॥
 श्रोत पाँच ज्ञानेन्द्रिय लइके मन मिलि सब अहंकार करै ।
 शोभित प्राण कोशको करिके, मन मय कोश अनन्द करै ।
 जन्म जन्म की विषय वासना मन मय कोश में प्राप्त सही ।
 एक अनेक प्रपंच दिखावे संचित कर्म अनादि वही ॥
 महा अविद्यामन को जानों यही ससार में प्राप्त करै ।
 लहर अनेक उड़ावे पल पल महा सिंधु ससार रचै ॥
 जाग्रत स्वप्न प्रपंच दिखावे जाय सुषुप्ती नाश भया ।
 साक्षी एक निरंजन रहिगा सोई आत्म रूप भया ॥
 मन मलीन बंधन करता है शुद्ध भये परकाश करै ।
 साक्षी आत्म रूप दिखावे भव बंधन का नाश करै ॥

(११४)

विषय भोग की रस्सी लड़के मन ही बांधि गिरावै ।
 जीवन मुक्त कहाँ से होवे विषय भोग जेव्यावै ।
 विषय भोग का त्याग किया जे भव बंधन से पार भया ।
 निरमल मन वही मोक्ष करावे अनुभव रूप स्वरूप भया ॥
 मनही बंधन मोक्ष करावे, ऐसा वेदाचार्य कहै ।
 सद्गुरु चरण कृपा ते मनही अलख अरूप लहै ॥
 रजगुण तमगुण के मिलने से भव बंधन में प्राप्त करै ।
 शुद्ध सतोगुण के रहने से मनही मोक्ष प्रधान करै ॥
 करै विवेक विराग बढ़ावै और बुद्धि परकाश करै ।
 शुद्ध सतोगुण में रहने से भव बंधन का नाश करै ॥
 विषय रूप आरण्य भूमि में मन नामक एक बाघ बसै ॥
 विषय भोग में पकड़ि जो पावै, गति गति बांधै आप कसै ॥
 साधन किया चतुष्टय जिसने विषय भोग का त्याग किया ।
 मन बाधी को पकड़ि लिया तब जोति रूप में बांधि लिया ॥
 साधन करै जो षट् सम्पत्ति की विषय भोग में जाय नहीं ।
 विषय अस जाने विषय को त्यागै, जिज्ञासू अधिकारि वही ॥
 ईश्वर चेतना रूप सही है इन्द्रिय प्राण प्रकाश करै ।
 कर्म वासना वायू लड़कै मन नामक वहि जाल रचै ॥
 रज तम गुण में भास परे से भया प्रकाश मलीन सही ।
 मन मलीन सुख दुख सब भोग अहंकार का रूप वही ॥
 अहंकार यहि जाल सही है, यहि संसार में प्राप्त करै ।
 ईश्वर में संसार दिखावै, झूठा सांचा जाल रचै ॥
 रजतम गुण में पकड़ि जो पावै शास्त्रज्ञ विद्वानहु होय ।
 मन ही पकड़ि के बांधि घुमावे राजा रंक चाहै जो होय ॥
 करै विवेक अनित्य मिटावै वहि पंडित विद्वान वही ।
 समदर्शी ब्रह्म ज्ञानी जिन जीव स्वरूप अरूप लही ॥

जैसे वायु वेग चलता है, तै सहि बादर दौरि चलै ।
 तैसे मन ही विश्व रचतु है कर्म वासना वेग चलै ॥
 जिसने मन को शुद्ध किया है, भव बंधन से पार भया ।
 मुक्ति हस्तामलक विराजै, क्रिया कर्म से रहित भया ॥
 जब प्रवल.मोक्ष की तृष्णा वाढ़ै विषय वासना नाश करै ।
 श्रवण मनन निद्वयासन करिके रजगुण चंचल दूरि करै ॥
 निद्वयासन जो किया है निश्चय, निर्मल बुद्धि विराज रही ।
 मन मय कोश को मिथ्या करिके आत्म रूप प्रकाश रही ।
 आत्मा का परकाश परे ते मनो मय कोश प्रकाश करै ।
 कर्ता भोक्ता रूप दिखावे सुख दुख भोग को प्राप्त करै ।
 मन मय कोश विकार भरा है माया इसको रचा रहा ।
 जड़ है मिथ्या रूप सही है साक्षी अलग विराज रहा ॥
 आदि अंत से रहित सही है दृष्टा रूप वही है ।
 दृष्टा दृष्टि अदृष्टा होइगा सब का रूप सही है ॥
 विज्ञान कोश में बुद्धि विराजै पाँच ज्ञान इन्द्रिय लइके ।
 कर्ता धर्ता रूप दिखावे सुख दुख आदि सकल करिके ।
 चेतन की प्रतिबिम्ब शक्ति लै बुधि करता लै धावै ।
 विज्ञान कोश में करै विलक्षण क्रिया कर्म अभिमान दिखावै ॥
 यह अभिमान ही अहंकार है, जीव को सकल घुमावै ।
 तीन देह में आप विराजै, क्रिया कर्म भोगवावे ॥
 ईश्वर का प्रतिबिम्ब पकड़ि के जीव अनेक किया है ।
 तीन लोक में जीव घुमावै अहंकार अस खेल किया है ॥
 विज्ञान कोष में आप विराजै सुख दुख आप बतावै ।
 जाग्रत का जो कर्म वासना स्वप्ने बैठि दिखावे ॥
 चेतन का परकाश परेते, ऐसा खेल किया है ।
 जाति वर्ण अभिमान आदि करि जीव को बांधि लिया है ॥
 विज्ञान कोश और प्राण हृदय लै चेतन रूप प्रकाश करै ।

जैसे दीप प्रकाश करत है तैसे आत्मा जोति वरै ॥
 बुधिकर साक्षी आत्म सही है, बुद्धि से रहित विलक्षण है ।
 चरण शीश तक व्याप्त वही है, सबसे रहित निरञ्जन है ॥
 लोहाके सम्बन्ध भयेते अग्नि विकार दिखानी है ।
 बुद्धि मलिन में बिम्ब परा जब जीव मलिन कर जाती है ।
 जब अग्नि तेज परकाश किया, तब लोहा आपन रूप किया ।
 मन बुधि चित कर साक्षी तेसे, भासक रूप सरूप किया ॥
 माया चेतन रूप धरेसे, एक अनेक उपाधि रचै ।
 सबसे रहित निरञ्जन न्यारा, चित पर बैठि प्रकाश करै ॥
 माया बड़ी उपाधि दिखावै, कह तक भेद बतावै ।
 ईश्वर चेतन रूप जे पावै, दाँन मांस चबावै ॥
 चेतन रूप पकड़ि जे पाया, ईश्वर जीव उपाधि गई ।
 साक्षी ज्योति रूप परकाशे माया सारी भस्म भई ॥

— — —

अनुमोदन

अनुमोदन इस बात का कि जिसके अन्दर में शुद्ध स्वरूप के जानने का विचार होता है, वह महात्मा पुरुष के ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है। प्रयत्न की प्रबलता से विद्वान् महात्मा मिल जाते हैं, पारस किसको कहते हैं लोहा किसको कहते हैं और सोना किसको कहते हैं? जैसे बिना देखे पूछने की जिज्ञासा होती है, उसी प्रकार आत्मा रूपी पारस को समझाने के लिये महात्मा हैं। ऐसे जिज्ञासु को समझाने के इस निमित्त भाग की रचना की गई है। पारस रूपी तो महात्मा हैं। वही ज्ञान स्वरूप हैं। उनका वाक्य धारण करना स्पर्श करना है। लोहा रूपी जीव को वाक्यामृत क्रिया द्वारा स्पर्श करना होता है। तब लोहा और पारस का स्पर्श होकर आत्मा रूपी ज्ञान वह पारस का पारस हो जाता है। पारस लोहा का स्पर्श करके लोहे को सोना बना देता है परन्तु ज्ञान स्वरूप सत पुरुष जीव को आप बना देते हैं। यही संत रूपी पारस और पारस में विशेष अन्तर है यथा गोसांई जी का वाक्य है :—

संत सरल नवनीत समाना । कहा कविन पै कहइ न जाना ॥

निज परिताप द्रवहि नवनीता । पर दुख द्रवहि सु सन्त पुनीता ॥

— — —

पारस में और संत में, बड़ी अन्तरो जान ॥

वह लोहा कंचन करे, यह कर आप समान ॥

एक, अखंड, सर्वव्यापी, पूर्ण, परमात्मा चेतन्य रूप है कि जिसकी पूर्णता को कोई जीव नहीं पहिचान सकता और उस अद्वितीय परमात्म स्वरूप का पाना संकल्प में नहीं मिलता फिर तो उसका समझाना स्थूल दृष्टि से परे है; परन्तु विचार करना चाहिये कि यह जो आश्चर्यमय

रचना है यह उसी का खेल तो है। सारे पदार्थ उसी के आधार से उत्पन्न हैं और उनकी स्थिति भी उसी में है। मतलब यह है कि कोई पदार्थ बिना भगवत की शक्ति के स्थिर नहीं है और न दूसरा कोई आश्रय ही है यह महान पारस (ब्रह्म विद्या) भगवत के कोष में अवश्य है और वह भगवत का कोष महात्मा जनों का हृदय ही तो है इससे यदि कोई इस पारस को अन्यत्र ढूँढ़ता है तो यह उसकी महान भूल है। संत जन केवल इसी महान वस्तु को बतलाने के निमित्त ही अवतार धारण करते हैं, अतः इस वस्तु को पाने के लिये जिज्ञासु प्रथम माया के पदार्थों से चित्त हटा लें भगवत की शरण ग्रहण करें और अपने को, भगवत को, माया को, परलोक को जाने। इन सब को पहिचानने की कुंजी अपने की पहिचान करना है, क्योंकि जब अपने की पहिचान न होगी तब दूसरे को कैसे कोई पहिचान सकता है। परमात्मा को पहिचानना बहुत सूक्ष्म तथा महात्मा जनों की स्थिति का स्थान है। जब अपने को जानना है तो यह समझना चाहिये कि हम दो पदार्थ करिके पैदा हुए हैं, एक तो यह देह जो कि स्थूल 'नेत्र' से देख रहे हैं दूसरी चैतन्य है सूक्ष्म रूप है और उसी को मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार भी कहते हैं। जो यह स्थूल नेत्रों से नहीं देखे जा सकते परन्तु विचार द्वारा जाने जाते हैं और चैतन्य तत्त्व ही तू है। जितने गुण हैं वह चैतन्य ही के अधीन हैं। आत्मा, हृदय, मनादि उसी के नाम हैं यह चैतन्य स्थूल सृष्टि से परे तथा पथिक की भांति इस देह में अपने कार्य बशात् आया है और यह स्थूल देह सदैव ही उसी चैतन्य के अधीन है। इस कारण उसका पहिचानना आवश्यक और भगवत के पहिचानने की तालिका है। अब यह विचार करना है कि जिस कार्य निमित्त यह पथिक इस देह रूपी सराय में आया वह कैसे पूर्ण हो? तथा उस कार्य का स्वरूप क्या है? उस कार्य का समझना ही भगवत की महान दया है विचार करने से ज्ञात होता है कि चैतन्य रूप अति प्रकट है चैतन्य शरीर के आश्रित नहीं है। दूसरे जब कोई पुरुष चैतन्यता के अभ्यास के निमित्त नेत्रादि इन्द्रियों को विषयों

से रोके और देहाभिमान का त्याग करे तब अपने को पहिचान ले और आत्म तत्त्व को प्राप्त होवे । इस बात को प्रत्यक्ष जाने कि चैतन्य इस स्थूल शरीर से भिन्न तथा अविनाशी है । भगवत् की सृष्टि दो प्रकार की है, एक स्थूल जो विनाशमान् है दूसरी सूक्ष्म सत्ता रूप है जो अविनाशी है और अखंड है । जिज्ञासु पुरुष को दृढ़ अभ्यास होने पर अपने स्वरूप का ज्ञान आप भासता है । जीव राजा है शरीर राज है । जीव रूपी राजा के कर्मचारी भिन्न-भिन्न हैं । नर शरीर को प्राप्त होकर भगवत् की प्राप्ति रूपी कार्य करना आवश्यक है ।

भगवत् का पहिचानना उसका अद्भुत खेल देख कर तथा उस पर विचार करने से होता है । जिस प्रकार जीव अपने शरीर का राजा है इसी प्रकार भगवत् सम्पूर्ण जगत का राजा है । मन की स्थिरता बुद्धि तथा विचार द्वारा दृढ़ करना चाहिये । मन की बुराई को जान कर अपने चित्त से त्याग करना चाहिये । क्योंकि जिसका जैसा स्वभाव होता है वैसा ही शरीर की प्राप्ति होती है, बुरे स्वभाव से हृदय रूपी दर्पण मलीन हो जाता है; जिससे आत्म रूप को नहीं देखा जा सकता जैसा कि गोसांई जी का वाक्य है—

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना ।

राम रूप देखहि किमि दीना ॥

अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ही निज स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है । अन्तःकरण रूपी दर्पण वासना करके मलीन होता है इससे वासनाओं का त्याग करना आवश्यक है । इन्द्रियों को विषयों से रोकना तथा वासना का त्याग करने से मन की स्थिरता होती है तब गुरु के उपदेशानुसार अभ्यास को दृढ़ करना चाहिये । अभ्यास परिपक्व होने से अपने शरीर और जगत का विस्मरण हो जाता है । विस्मरण कहना मात्र ही है । वास्तव में तो असत् वस्तु का अभाव और सत् वस्तु का सद्भाव ही होता है । और बहुत सी बातें जो सांसारिक अवस्था में नहीं जानी

जाती वह इस अवस्था में जानने में आती हैं इस अवस्था में स्थिति होने के निमित्त प्रबल अभ्यास ही की आवश्यकता है। भगवत अनुग्रह सदैव साथ रहता है जिसका विश्वास करना चाहिये। इस गोप्य रहस्य को समझने का नाम ज्ञान है। ज्ञान अनुभव विद्या, यथार्थ वस्तु का ज्ञान आदि आत्म स्वरूप की प्राप्ति ही का नाम है। आत्म स्वरूप की प्राप्ति जब तक नहीं होती तब तक यह जीव पराधीन और महानीच है। मनुष्य को अपने का पहिचान करके भगवत को पहिचानना और अपने गुणों को पहिचान कर भगवत के गुणों को पहिचानना चाहिये और जिस प्रकार इस शरीर और इन्द्रियों की जीव रूपी राजा की पराधीनता है इसी प्रकार भगवत की आज्ञा में ही समस्त जगत की उत्पत्ति, लय आदि है। भगवत सर्वशक्तिमान, अन्तर्यामी, अखण्ड, असंग, सर्वव्यापी है और वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। महात्माजनों की विद्या से उसका यथार्थ रूप जाना जाता है। जिन पुरुषों ने शरीर व इन्द्रियों का विस्मरण किया है और अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित हुए हैं। उनको परलोक भासित होता है अर्थात् परे से जो परमात्मा वही अपना स्वरूप उसमें स्थित हो जाना ही परलोक है। वही परलोक रूपी विद्या महात्माजनों के चित्त विषय खुली है उस विद्या का जानना इन्द्रिय मार्गों द्वारा नहीं होता। जो अधिकारी पुरुष कर्म उपासना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध कर लेता है, उसकी सूक्ष्म बुद्धि से जाना जाता है। ग्रन्थ की पूर्ण-हृति की जा रही है अधिक विस्तार नहीं किया गया। जो कोई जिज्ञासु अच्छे महान पुरुष के सामने पढ़ेगा और समझेगा उसको वह निश्चय करके समझावेंगे, क्योंकि ग्रन्थ रूपी दर्पण उनके अन्दर में है। थोड़े में वह कृतार्थ हो जायगा। कृतार्थ रूपी आत्मा स्वयं अपने में विराजमान है। उसको ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है केवल अज्ञान रूपी जो परदा पड़ा है उसको हटाना चाहिये और उसको हटाने की रीति महात्मा पुरुषों ने भली प्रकार निश्चय किया है जिससे वह हटा सकते हैं।

(१२१)

भजन

ज्ञानी का अभेद सुनो, बसते हैं सुजान देश, वेद शास्त्र
वाक्य तहाँ अंत नहीं पाता है । ऐसे सुजान देश, ज्ञानी
वहाँ बसते हैं, कोई अधिकारी जहाँ जाने को चाहता है ।
वेद शास्त्र सार जान, करते हैं पयान तहाँ, गुरु शरण
जाय के इसारे चढ़ जाता है । उठती है तरंग तहाँ
असंशक्ति अनूप हो तहाँ पर अधिकारी जाय अपने को
थहाता है । भावना सुजान जान, बुद्धि का अभाव मान,
अलख समुद्र मध्य जाय अलखै द्वै जाता है ।
कहते हैं रामेश्वरानन्द ॐ राघेद्याम गुरु पाय
अक्षर से न जाना जाय गुरु ही जनाता है ।

हरिः ॐ तत्सत्

शान्तिः

भजन श्री मग्नानन्द जी महाराज

श्री श्री १०८ स्वामी मग्नानन्द महाराज जी जो चार वेद और छः शास्त्र का अवलोकन और सदैव वर्तमान योगीन्द्र महायोगीन्द्र की आज के दिन तक जिला फतेहपुर गाँव तेवारीपुर गंगा तट पर दक्षिण तरफ उत्तर डलमऊ के सामने विराजमान स्थान हैं और नाम का प्रभाव उस जगह पर अब तक प्रसिद्ध है तिनके चरणारविन्दु के अभिलाषी शिष्य तथा सेवक अनेक थे उसी प्रकार उपदेश धारण कराया । श्री श्री १०८ स्वामी राधे श्याम जी परम अपने गुरु महाराज के अधिकारी रहे । जिनका स्थान जिला इलाहाबाद बाजार इस्माइलगंज (तहसील सोराम) के निकट गाँव उदयचन्द पुर में सम्बत् २००२ में शरीर का लयकार करके निरंजन स्वरूप हुए । स्वामी के चरणों की शरण मैं गया । श्री श्री १०८ स्वामी मग्नानन्द जी महाराज के २१ भजन तथा श्री श्री १०८ स्वामी राधे श्याम जी महाराज की रचनायें हनुमान प्रेम चालीसा गुरु महात्म तथा सम योग उपलब्ध थी, वह यह हैं ।

(१) जबते राम चरण चित दीना ।

छूटे भ्रान्ति जनित संसृति दुख बन प्रमोद घर कीना ।

नित्यानन्द विहार एक रस वृद्ध होइ नहिं छीना ।

सेवत शिवसनकादिक नारद ब्रह्मादिक परबीना ।

प्रकट एक रघुवीर राम सोइ जिमि पट सूत्र नवीना ॥

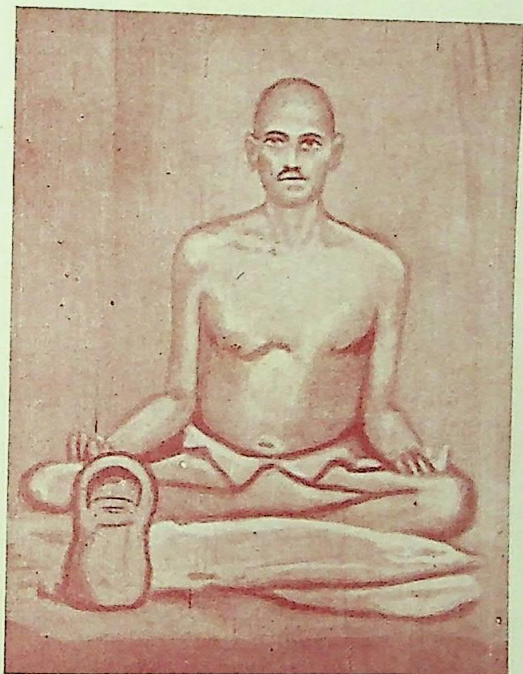
(२) सुनौ मन यार उपदेशी जगत को आप परकाश ।

गुरु उपदेश जब देवे नाम रूप क्रिया सब खोवे ।

तब स्व अंदर बैठि गम खावै आप में आप को पावै ।

स्वरूपानन्द जब भीजै वृत्ती सब ताहि में छीजै ।

हंसा रूढ सरस्वती निजपदं हंसं परित्यज्य या
यस्यान्वर्थक नामधेय विदुषो जिह्वां समासेवते
बोधं प्राप्य ततः कृतार्थ मनसः शिष्या बभूवुस्तुतं
मग्नानन्द सरस्वती यतिवरं वन्दे परं सद्गुरुम्



अनन्त श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य तपत्याग मूर्ति
ब्रह्मविद्वरिष्ठ असम्प्रज्ञात समाधिनिष्ठ
महर्षि मग्नानन्द सरस्वती ज्ञ देवमहाराज

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

(१२३)

मोह दिन रैन परछाई देश गुण काल तंह नाहीं ।

श्री मग्नानन्द यों जागै द्वैत परपंच सब भागै ॥

(३) स्व सम वेद समुक्त मन मेरे ऐसन देश हमारा है ।

बिना यंत्र वह जन्त्री बाजै बिना भानु उजियारा है ।

बिन रसना वह शब्द उचारै मुरली बीन सितारा है ।

वहाँ जाय मन मग्न भयो है नाम रूप क्रिया टारा है ।

सोहं शब्द एक द्वितीय बिनु ररंकार विस्तारा है ।

काल कर्म गुण संशय ताही मृत्यु यम से न्यारा है ।

श्री मग्नानन्द भेद सो पावै जो गुरु मग पग धारा है ॥

(४) जगत है रैन का सपना तु क्या गाफिल भुलाना है ।

कुटुम्ब परिवार धन दारा नहीं अपना बिराना है ।

सुमिरु सुख रूप अपने को सदा हाजिर समाना है ।

श्री मग्नानन्द भल बोधा नहीं दुसरा ठिकाना है ॥

(५) अपार धुनि ओंकार सुन नहि समय ऐसन बनी ।

सरस श्रवण अपार दरशै मिलै अमृत धुनि ।

धुनि सुनी पिय खबर की तब सुरति चेतन बनी ।

भई बिरहिन सुरत निशिदिन रटत सतगुरु मनी ।

सत्य परसत सत्य भइ सत सत सत्यहि सती ।

सत्य में दमकी प्रभा आनन्द अम्बुधि जनी ।

होइ मगन आनन्द में यह कह्यो सतगुरु धनी ॥

(६) राम को जपइया सर्वज्ञ होत राम नाम को प्रभाव वाल्मीकि ने

बतायो है । कीन्हो है भविष्य काव्य सियाराम गुणग्राम विविधि विधि

सुनायो है । सोइ राम पार ब्रह्म अक्षर अनूप गुरु देव ने लखायो

है । वास देव मिति ख्यात भेद रहित वेदन ने गायो है । जान्यो न

उपासना में नाम छांड़ि और कछु जाके प्रकाश ब्रह्म आतम दरशायो

है । ताते रघुबीर अभय नाम को प्रभाव जानि कुम्भजरकार भव-

वारिधि सुखायो है ।

- (७) भूलन भूलत संत सुजान संभारे ।
 शून्य शिखर पर अजब हिंडोलन अर्द्ध ऊर्द्ध असमान ठियारे ।
 आपा खम्भ पवन की डोरी सुरति भुलावन हार किया रे ।
 इंगला पिंगला चमर डुलावै सुषमन दीपक बारि दिया रे ।
 जगमग भिलमिल दामिनि दमके शब्द अनाहद अमर पिया रे ॥
 विनु बादर तहं आनन्द वरसै बरसि बरसि भरियार किया रे ।
 भीतर बाहर त्रिगुण भीजै पचरंग धोइ बहाय दिया रे ।
 श्री मग्नानन्द अचल यह भूलन भूलन हारे गुरु के प्यारे ॥
- (८) चेतन मंगल मोद मई है ।
 सर्व निवासी सदा अलेपा घट घट अन्तर बाह्य सोई है ।
 एक तो ज्ञान स्वरूप कहावत सुगति सजाति विज्याति छई है ।
 शुद्ध स्वरूप अखंड सो निर्मल हों मैं रहित प्रकाश मई है ।
 श्री मग्नानन्द बुद्धि को साक्षी घट पट सोऽहं सुरति ठई है ॥
- (९) हमन निज रूप के आशिक यही मायूक हमारा है ।
 जो जाने है सकल घट की वही यह खेल धारा है ।
 जो नभ सम एक विभु व्यापी उसी का रूप सारा है ।
 लखै यह देश गुरु ज्ञानी जिन्होंने मन संभारा है ।
 श्री मग्नानन्द गुरु गम की अलख गति अपार वारा है ॥
- (१०) चेतन भिन्न अपर नहि कोई ।
 जो भासै सब सत् चित आनन्द दूसरहुआ न होई ।
 आपु आपु में सब कुछ भासै चित बिलास है सोई ।
 सर्व यह चेतन जोई ।
 आपहि ब्रह्म ब्रह्म नहि जानै आपुहि जानै सोई ।
 मग्नानन्द कछु जतन नहीं है आपा मिटे सुख होई ।
 द्रवै नहि भासै कोई ॥
- (११) सत गुरु नाम जपो मन मेरे आगति दूर ह्वै जाई ।
 नीचे कमल ऊर्ध्व होइ बिकसै अन्भुत अलख देखाई ।

सेप चाल चलि वक नाल चढ़ि त्रिकुटी जाय समाई ।
ताके ऊपर पक्षी मारग सुरति गगन को जाई ।
अम्बर मध्य छिद्र एक सूक्ष्म वेहि महं जाइ समाई ।
तामहं जाइ बढ्यो जिमि वामन तिल ब्रह्मांड मिटाई ।
श्री मग्नानन्द अचल होइ बैठो आपा गयो भुलाई ॥

(१२) दिवाने क्या भूला घर दूर ।

चौदह तब खूब की रचना यह आतिश के फूल ।
क्या सोचूं तू मोह निशा में नहि पाया महबूब ।
जिसका वार पार नहि भूझै भटक भटक मरै क्रूर ।
श्री मग्नानन्द पूर जब दरस्यो क्या नियरे क्या दूर ॥

(१३) आपुहि सतगुरु जगत पसारै आपहि देखन हारा है ।

बाहर दृष्टी जगत पसारै अन्तर दृष्टी टारा है ।
ज्ञाता ज्ञानज्ञेय त्रिपुटी यह व्यष्टि समष्टि जारा है ।
श्री मग्नानन्द स्वरूप अखंडित सब मंह सब से न्यारा है ॥

(१४) आपुहि में आप समाया ।

स्वयं प्रकाशन न सोवत जागत नहि कहूँ गया न आया ।
नहि उत्पति नहि परलय सृष्टी ईश्वर जीव न माया ।
वेद कुरान शिष्य नहि मुरशित अलख अरूप अजाया ।
नाम रूप क्रिया रज्जु सर्प जिमि अद्भुत खेल दिखाया ।
श्री मग्नानन्द स्वरूप अखंडित गुरु दृष्टी दरशाया ।

(१५) ऐसा यह देश दिवाना है ।

सत्गुरु शरण सदा भय त्यागो अचल परम स्थाना है ।
मृग जल सम सब दृश्य उदारथ क्या बंदे बौराना है ।
परे हंस जेहि कहत सोई तुम भ्रान्ति छोड़ि निर्बाना है ।
सब में तुही तुही में सब है नहि कहूँ आना जाना है ।
कहैं रघुबीर शरण मस्ताना बुन्द में सिन्धु समाना है ।

(१६) निशिदिन बरसत अमृत सारे ।

मधुर मधुर ध्वनि बादर गरजत कोटिन चन्द्र सदृश उजियारे ।
सुरति कटोरी भरि भरि पीवे पियत पियत छकि अमर जियारे ।
श्री मग्नानन्द स्वरूप अखंडित पिया हेरति भय आप पियारे ।

(१७) अस्ति भाति प्रिय पूरण सोई ।

अस्ति भाति प्रिया नाम रूप यह पंच अंश श्रुति गुरु नहि गोई ।
तीन अंश सत चित आनन्द घन युगल अंश भ्रम कल्पित होई ।
ज्यों मरुथल भ्रम जल भासत है ताते भूमि न गीली होई ।
नाम रूप क्रिया ज्यों व्यभिचारी ताते चेतन हानि न होई ।
श्री मग्नानन्द बुद्धिकर साक्षी आप आप द्वितीया सब खोई ।

(१८) चेतन में चित दृष्टि प्रभासत दृष्टि में सृष्टि अनन्त नई है ।

दृष्टि के नासत सृष्टि बिनासत दृष्टि प्रकाशत सृष्टि भई है ।
दृष्टि का साक्षी सदा निर्लेप अरूप अजक्रिय मोद मई है ।
रघुवीर सो ज्ञान अखंडित रूप मनन्दित पूरण ब्रह्म सोई है ॥

(१९) आतम ब्रह्म ज्ञानी ते न और दूजो ज्ञानी जान, अहंग्रह ध्यान ते न
और दूजो जोग है । सत्य को समान ज्ञान माया को अधार जान,
चेतन विशेषज्ञान दृष्टा अधिष्ठान है । चेतन विवर्त असमाया
परिमाण मान, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय यह त्रिपुटी समाज है । रज्जु के
के प्रत्यक्ष काल अहि जैसे रज्जु रूप चेतन प्रत्यक्ष समय माया ब्रह्म
रूप है । आत्मा स्वरूप सोतो सतचित आनन्द है, कहीं रघुवीर
सोऽहं स्वयं प्रकाश है ।

(२०) नहीं मेरी जाति पांति न मैं काहू मिला चाहौं, नहीं कोई मेरो है
न मैं हौं कोऊ काम को लोक परलोक उभय बुद्धि का विलास
जानि छोड़ि दे विकार श्री रघुयोर निर्विकार हैं ।

(२१) मैं कहता हूँ आखिन देखी तू कहता है कागज लेखी

मेरो तेरो मनुआं कैसे एक होयरे ।

मैं कहता हूँ जागत रहिये तू जाता है सोय रे । मेरो तेरो०

मैं कहता हूँ निरमोही रहिये तू जाता है मोहि रे । मेरो०
 मैं कहता सुरभावत रहिये तू देता उरझायरे । मेरो०
 मैं कहता हूँ दृश्य पदारथ तू अनदेखी जायरे । मेरो०
 श्रीमन्गानन्द शोध भल देखो आनन्द रूप अपार रे । मेरो०

श्री हनुमान प्रेम चालीसा

सुमिरि राम सिय संत गुरु, गणपति गौरि गणेश ।
 नाम लेत सुख होत है, नाशत विघ्न कलेश ॥
 भक्ति भक्त भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
 तिनके पद वन्दन करूँ, नाशत विघ्न अनेक ॥
 जै हनुमान ज्ञान गुण शीला । समदरशी जान्यो हरि लीला ॥
 राम चरण पंकज अति प्रीती । वेद पुराण संत कहैं नीती ॥
 रामचरण पद प्रीति सुहाई । व्यास आदि कवि नारद गाई ॥
 रामचरण के तुम अधिकारी । भक्ति प्रताप तेज बल भारी ॥
 जै हनुमान पवन सुत योधा । रामचरण तुमरे मन बोधा ॥
 जय हनुमान अंजनी जाये । रामचरण पंकज पद पाये ॥
 रामचरण पद प्रीति अभंगा । कवहुँ न होइ ज्ञान रस भंगा ॥
 रामतुमहिं प्रानन से प्यारे । भूलि न होउ चरण ते न्यारे ॥
 रामचरण पंकज मन दीना । पूरण भवन विमल जस लीना ॥
 राम जपो तुम दिन अरु राती । कीरति ललित सकल जग माती ॥
 राम भक्ति हृदय सरसानी । जनु सावन घन बरसै पानी ॥
 रामचरण पद प्रीति दृढ़ाई । प्रेम प्रतीति नदी सोइ धाई ॥
 ज्ञान ध्यान दोउ जानु कगारा । सुरति निरत सोइ धार प्रचारा ॥
 धर्म अचल सुन्दर जल धीरा । परसत हरै मनोभव पीरा ॥
 विरति विवेक लगे तरुनाना । क्षमा दया सोइ बेलि बिताना ॥
 जप तप संयम पछी बोलैं । खग मृग वृन्द अनेकन डोलैं ॥

सम संतोष सो जल चर जाती । कहि को सकै विभूल बहुभाँती ॥
 बुद्धि बिचार कमल सोइ फूला । निर्मल मन भौरा तह भूला ॥
 यहि बिधि जात नदी सोइ सोहा । सुर नर मुनि सबका मन मोहा ॥
 बोध स्वरूप सिन्धु ठहरानी । धन्य पवन सुत सोइ सुखजानी ॥
 धन्य धन्य तुम पवन कुमारा । रामरूप जिन नैन निहारा ॥
 जो स्वरूप ब्रह्मादिक भाषा । सोइ प्रभु हरषि हृदय तुम राखा ॥
 मन बच कर्म अगोचर करनी । महिमा तासु वेद नहि वरनी ॥
 सोइ प्रभु चरण पलोटेउ नीके । दहेउ दोष दुख दारुन जीके ॥
 तुम समान कोउ नहि बड़भागी । संतत रहत राम अनुरागी ॥
 को कहि सकै प्रताप तुम्हारा । सकै को जान विदित संसारा ॥
 जय हनुमान राम अधिकारी । जय जय जय धुनि देव पुकारी ॥
 सुरनर नाग मनुज सब किन्नर । पावन जस गावत अति सुन्दर ॥
 राम आप मुख कीन वड़ाई । सो सब कहत शंभु सकुचाई ॥
 सो मैं वरणि कहौं अब कैसे । मूक स्वाद कहि सकै न जैसे ॥
 तीन लोक तुमरो यश छावा । सेष सारदा बुध कवि गावा ॥
 रामकाज सब विधि तुम कीना । भक्ति अभय रघुनायक दीना ॥
 निर्भय भये सकल रस त्यागी । रामचरण पंकज अनुरागी ॥
 रामचरण पंकज पद पाये । सो सनकादि शंभु मन भाये ॥
 सोइ पद कमल शंभु मन गोये । ते पद परसि नयन तुम जोये ॥
 सो हनुमान सकल गुण ऐना । राम विलोके तुम भरि नयना ॥
 रामप्रताप बसै उरमाहीं । विश्व विजय तिनकहं भय नाही ॥
 सुमिरि पवन सुत गुण सोइ मूला । राम रहैं तिन पर अनुकूला ॥
 जय हनुमान पवन सुत बीरा । सुमिरहि हृदय तुमहि रघुबीरा ॥
 कंपहि लोकप तुम्हरी हांका । जै हनुमान बीर बल बांका ॥
 सहस पवन सुत कपि दल बोलैं । निश्चर कुल सबके मन डोलैं ।
 मेघ नाद सुनि हनुमत नाऊँ । रहत न प्राण तासु उर ठाऊँ ॥
 सुमरि पवन सुत जो उर लावै । तिनके निकट भूत नहि आवै ॥

औरहु रोग अनेक नशाई । नाम लेत दुख दूरि पराई ॥
 आधि व्याधि नाशहि सब रोगा । सेवत तुमहि सुलभ सब भो ।
 राधेश्याम कहैं कर जोरे । पुर बहु नाथ मनोरथ मेरे ॥
 रामलपण अरु जानकी, चाप बाण धरि हाथ ।
 मम उर अन्तर सोइ बसो, लिये पवन सुत साथ ॥

गुरु माहात्म्य

सद्गुरु की करि वंदगी, परसो पद निर्वात ।
 नहि तो धोखा खावगे, लीन्हे काल कमान ॥१
 संत सुजन विरले बचे, रहे नाम की ओट ।
 श्याम कहैं रटि नाम को, कठिन काल की चोट ॥२
 अजामील से खल तरे, एक नाम की गैल ।
 श्याम कहैं सोइ नाम विनु, वृथा भये नर बैल ॥३
 देखहु बल श्री नाम को मर्कट बांध्यो सेतु ।
 सैन सहित रघुवंश मणि, उतरे रघुकुल केतु ॥४
 कोई को बल योग को, कोई को बल वेद ।
 श्याम भरोसे नाम के, विचरत रहद अभेद ॥५
 कोइ के बल धन धाम को, कोइ को बल तनजोर ।
 श्याम कहैं तोहि नीक है रटिये नन्दकिशोर ॥६
 नहि निन्दा नहि भूठ कहैं, साखी तुलसीदास ।
 औरहु भक्त अनेकन, नाम रटत भय पास ॥
 बालमीकि उलटा जपा, वेद विदित गुण गाथ ।
 रामनाम सादर जपै, सोइ स्वामी मैं दास ॥८
 प्रथमहि गुरु मोसन कही, तब कछु रहेंउ अबूझ ।
 श्याम कहैं बल नाम के, समुझि परी तब बूझ ॥९

थल बिनु जल ठहरै नही । थल पाये ठहराय ।
 श्याम कहैं रटि नाम को, बिमल होत थिर पाय ॥१०॥
 मन के सब कीतुक तजो, रहिये सहज सुभाय ।
 श्याम कहैं बल नाम के, अपने आप जुड़ाय ॥११॥
 रामनाम एक सार है, और सब वस्तु असार ।
 संत सुजन यहिको गहैं, जिनके बिमल विचार ॥१२॥
 अस विचारि सब छाड़िके, गही गुरु पद पाय ।
 श्याम कहैं पछितावगे, नरक परोगे आय ॥१३॥
 आदि संग आई नही, अंत संग नहि जाय ।
 बीच मिली बीचहि रही, इसका यही स्वभाय ॥१४॥
 रामरूप हृदय नहीं, तब लग कठिन कलेश ।
 राघेश्याम संत कोइ पूरे, पहुँचे अपने देश ॥१५॥
 बिना भजन भगवंत के, निशि दिन आवत जात ।
 उपजत त्रिनशत रहत है, ज्यों तरुवर के पात ॥१६॥

चौपाई—नाम रटै तेई जन योगी । नाम विहीन जान जन रोगी ॥

रामनाम औषध सुख मूला । नाशत रोग हरै भव शूला ॥

रामनाम भव सागर नौका । उतरत पार न पावै धोका ॥

रामनाम जिनके उर नाहीं । वृथा भये नर खर की नाही ॥

चंदन भार पीठ पर बोझा । वास सुवास जिनहि नहि सूझा ॥

रामनाम जिनके विश्रामा । गर्जत जात चले निज धामा ॥

बोहा—नाम बड़ाई को करै, थाके शारद शेष ।

राघेश्याम कहैं अब कैसे, मूरख अवगुण भेष ॥

— — —

समयोग

सत्य असत्य की सधि में, पूरण रूप समान ।
 राधेश्याम तू ताहि लखु, वह है पद निवर्ण ॥
 अपना देखइ आप में रहै शब्द के पास ।
 शब्द लखत शब्दहि भयो, पूरण शब्द प्रकाश ॥
 सतगुरु बाणी मैं सुनी, सुनौ सुवेद पुराण ।
 कुछ अपनी अनुभव लखी, ताते शब्द प्रमाण ॥
 चलत फिरत बैठत उठत, रामरूप रसलीन ।
 श्याम कहैं निर्भय वही, नहि कछु हर्ष न दोन ॥
 खेद खिन्न मन से गई, बाढ्यो प्रेम प्रभाव ।
 श्याम कहैं आनन्द वही, आतम सहज सुभाव ॥
 काल कर्म गुण है नही, नहि कछु देश न भेष ।
 तुरीया तीन वेद अस भाष्यो, सोइ सतगुरु उपदेश ॥
 जब लग लखै न आप को, तब लग नहीं जुड़ात ।
 आप लखे सीतल भयो, नहि कहैं आवत जात ॥
 हिय मन्दिर शोधा नहीं, करे अन्य की सेव ।
 मृग तृष्णा में भरमि के, लख्यो न आतमदेव ॥
 सत्तगुरु शब्दो बाण है, अंग-अंग डारा तोर ।
 प्रेम खेत घायल गिरे, टांका लगै न जोर ॥
 जब लग लखै न आप को, तब लग कठिन कलेश ॥
 आपु लखे आपुहि भयो, दुख न रहेउ लवलेश ॥
 नव खिरकी का पीजरा, चिड़िया बोल अमोल ।
 कुछ दिन में उड़ि जायगी, परामोल का पोल ॥
 मन बाणी पहुँचै नहीं, बुद्धि न करै प्रकाश ।
 श्याम कहैं चेतन वही, सब घट तामु निवास ॥

देह होत अरु मिटत है, रहे ठिकाने आप ।
 राधेश्याम भजो सर्वेश्वर, सो सद्गुरु का जाप ॥
 मन दर्पण काई लगी, नहि दरसत है ज्ञान ।
 जैसे घन की ओट में छिपा रहत है भान ॥
 आतम भीतर सब बसत, आतम सबके पास ।
 सन्त सुजन विरले लखैं, ते सद्गुरु के दास ॥
 क्षर अक्षर के बीच में, सहजहि करै प्रकाश ।
 राधेश्याम भजो सर्वेश्वर, अपुना अपने पास ॥
 रामरूप मन में लखो, नहि कछु और सुहात ।
 राधेश्याम भजो सर्वेश्वर, अधिक अधिक अधिकात ॥
 जब लग फुरना प्राण में, तब लग भूठा ज्ञान ।
 अचल भयो फुरना नहीं, बूँद में सिन्धु समान ॥
 चेतन चेतन सब कहेउ, चेतन है भरपूर ।
 अपुना लख्यो न आपु में, तासों रह्यो जू दूर ॥
 देह दिवालो जानिये, आतम पूरन देव ।
 संत हंस कोइ जीहरी, विरला जानै भेव ॥
 जित देखे तित राम हैं, सतगुरु वचन प्रमान ।
 राधेश्याम मिने गुरु पूरे आतम सुख सरसान ॥
 सो आतम सुख पाइके, अन्त कहैं नहि जाय ।
 राधेश्याम मिले गुरु पूरे, पूरव पुण्य सहाय ॥
 कपट केवरिया खोल दे, दरसै आतम पीव ।
 राधेश्याम कहैं निज अपनी, बिना ज्ञान के जीव ॥
 मन बानी जहँ गम्य है, साक्षी अवस्था तीन ।
 सोतो शुद्ध स्वरूप है, यह सतगुरु कहि दीन ॥
 गुरु शिष्य दोउ एक हैं. देखत भिन्न शरीर ।
 अन्त मता पुनि एक है, सागर सरिता नीर ॥

(१३३)

शब्द सिन्धु सरिता सुरति, पुरुषारथ सोइ धार ।

मिलत मिलत पुनि मिलि गई, देखो करो विचार ॥

चौपाई—जोगी वही मसान चेतावै । काया जरै न मनहि डोलावै ॥

अस विचारि बैठो एक ठौरी । मेरु दंड की राह ढंडौरी ॥

सुरतिवान लै चढ़ै अकाशा । राम रूप तहँ करै प्रकाशा ॥

जगमग झिलमिल दामिनि दमकै । जनु सरोज मोती तहँ वरसै ।

झलकै झलाझला मिल जोती । हंसा चुगन लाग मन मोती ॥

सोऽहं सोऽहं निशि दिन बोले । योगी सौदा करै अमोले ।

अमृत बूंद भरै भरि लाई । विनु सद्गुरु कोइ राहन पाई ।

सद्गुरु बूझि बूझ कोउ बूझै । तब अनुभव पद रचना सूझै ।

दोहा—गुरु बिना जग आंधरो, क्यों करि सूझै पंथ ।

श्याम कहैं तोहि नीक है, रटिये राधाकंत ॥

— — —

स्वरूपानुसन्धानम्

अनन्त श्री यतीन्द्र मग्नानन्द सरस्वती जू देव कृत

न धर्मोऽप्यधर्मो न वर्णाश्रमौ मे, न पुण्यं न पापं न नापाक वर्गौ ।
चिदानन्द सत्यैककैवल्य रूपो, विचित्र प्रकाश स्वरूपोऽहमात्मा ॥१॥
न मूर्खो न विद्वान्न विद्वद्वरेण्यो, न वेदान लोका न मे यज्ञसिद्धिः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता, परानन्द नित्य स्वरूपोऽहमात्मा ॥२॥
धरित्री जलं नैव तेजो न वायुर्नचाकाश शब्दो न वा गोचरोऽहम् ।
स्फुरद्ब्रह्मा वृत्त्यैकगम्यो निरीहः, सदा स्वच्छ साक्षि स्वरूपोऽहमात्मा ॥३॥
न साध्यं न सिद्धं कुतः साधनं स्नान, जीवोऽप्यहं शोकमोहापविष्टः ।
अहं निर्विकल्पो, निराकाररूपो, विभुः सर्वदा शुद्ध बुद्धोऽहमात्मा ॥४॥
अजो निर्गुणो निर्विकारः प्रशान्तः, परब्रह्मरूपः कथं मे शरीररम् ।
महद्ब्रह्मयोनेरधिष्ठानवाच्यो गुणातीत कूटस्थ रूपोऽहमात्मा ॥५॥
अवस्थात्रयाणां न मे गन्धलेशः, कथं विश्वता, प्राज्ञता, तेजमत्वम् ।
अनात्माश्रयत्वात्सदा तुर्यरूपः स्वतः स्वप्रकाशस्त्वनन्तोऽहमात्मा ॥६॥
अणुत्वादिहीनो महत्त्वादिहीनस्तथा ह्रस्वदीर्घादिमानाद्विहीनः ।
प्रमण—प्रमेय—प्रमातृत्व—हान्नात्, परिच्छेद शून्यादनन्तोऽहमात्मा ॥७॥
विरक्तो न सक्तो न बाहं मनुष्यश्चतुर्था न वृत्तिर्नचान्तः शरीरे ।
अवाच्योऽस्मि शब्दस्य जन्यो न बाहं, शिवानन्द ज्ञान स्वरूपोऽहमात्मा ॥८॥
तदित्थं परिज्ञात रामस्वरूपं, परब्रह्म सत्यं न विज्वं समस्तम् ।
निराकृत्य नामादि रूपं प्रपञ्चं, सदानन्दमग्नस्वरूपोऽहमात्मा ॥९॥
सनातन स्वरूप श्री मग्नानन्द सरस्वती, नाम रूपे तिगाकृत्य स्वात्मा-
रामो विराजते ॥१०॥
आत्मनश्चानुसन्धानं, प्रोक्तं यः कुरुते सदा, सर्व पापविनिर्मुक्तो मोक्ष-
भागी भवेद्भुवम् ॥११॥

अनुभवाष्टकम्

श्री परमहंस राधेश्याम सरस्वती यतिनां विरचित

॥ सवैया ॥

काह कहौ कहते न वन
विपरीति को देख हंसी मोहि आवैं ।
जो कुछ आप है आप ही हैं
पर माया नटी तेहि नाच नचावैं ॥
नाच यही प्रिय लागत श्याम जू
श्रेय को त्यागि कै प्रेय सुहावैं ।
आप सों आप में आपही भूलिगौ
आप में आप कहां ते समावैं ॥१॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपति में जो
भोक्ता भोग्य औ भोग कहावैं ।
तासो विलक्षण साक्षी अहै तू
चेतन मात्र सदा ही रहावैं ॥
अन्वय औ वितरेक सों श्याम जू
दृष्टा दृश्य की दृष्टि हटावैं ।
आप में आप सों आप को देखत
आप में आप ही आप समावैं ॥२॥
जेहि को भ्रमि आतम मानत है
वह तो गत शील शरीर कहावैं ।
बाहर हू जेहि में रुचि राखत
बाहर ही रहि तोहि रिखावैं ॥
राधिका श्याम सुनो यह बात
अलौकिक है सुनु जौ मन गावैं ।

(१३६)

आप में आप सों आप को देखतै
आप में आप ही आप समावै ॥३॥
ज्ञान की गूदरी गाथ गथै नित
वात सुनै नहि वात बनावै ।
मानै नहीं अरु जानत आप ही
आप नचै अरु और नचावै ॥
राधिका श्याम कहै सुनु मित्र
तू नाहक ही शुभ जन्म गवावै ।
आप में आप सों आप को देखतै
आप में आप ही आप समावै ॥४॥
देह के भाव सों दास अहै अरु
जीव के भाव सों अंश कहावै ।
आत्म भाव सों आप ही है
यहि भेद को वेद सदा दरसावै ॥
भाषत राधिका श्याम सुनो
भ्रम में परि कै निज क्यों भरमावै ।
आप में आप सों आप को देखतै
आप में आप ही आप समावै ॥५॥
जाननहार तो जानत नाहि
अजान भये ही सुजान कहावै ।
देखनहार दिखावनहार
प्रकाशक आप ही कौन दिखावै ॥
राधिका श्याम कहै केहि भाँति
पै एक ही रीति यही मोहि भावै ।
आप में आप सों आप को देखते
आप में आप ही आप समावै ॥६॥

(१३७)

आवत जात लखै नहि कोइ
रहेह न काहू को काहु दिखावै ॥
मानत जीव सब अपने कहं
देह के द्वार सो मान बढ़ावै ॥
राधिका श्याम सो सत्य अहै
पर सत्यता को केहि भाँति सो पावै ।
आप में आप सों आप को देखते
आप में आप ही आप समावै ॥७॥
ईश्वर जीव औ आत्मा ब्रह्म ये
माया प्रपंच प्रत्यक्ष लखावै ।
आप ही आप ते बाध अबाध है
श्याम जू वेद सही समझावै ॥
आप ही आत्मा ईश औ ब्रह्म है
प्राण के मारग हीं ते दिखावै ।
आप में आप सों आप को देखिबो
चेतन युक्ति यही ठहरावै ॥८॥
॥ दोहा ॥

निरालम्ब को गहि रहो सलम्बहि को त्यागु ।
काहे को भटकत फिरत त्यागु राग अनुराग ॥१॥
निरालम्ब को जो गहत सो पावत निरवान ।
सोइ सन्यासी सोइ यती सोई योगि महान् ॥२॥
संवत् श्री उन्नीस शत सरसति श्री शशि वार ।
असिति भाद्र नवमी सुतिथि लीन ग्रंथ अवतार ॥३॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

— — —

—प्रकाशकीय परिशिष्ट—

अनन्त श्री विभूषित परिव्राजकाचार्य १०८ श्री मग्नानन्द सरस्वती जू महाराज का चित्र एवं अनुभव गम्य उद्गार २१ पद्य रूप में यथास्थान वर्णित है। अनन्त श्री विभूषित १०८ राधेय्याम सरस्वती जू महाराज का अनुभव गम्य उद्गार 'अनुभवालोक' पुस्तक सम्बत् १९७२ में प्रथम-वार प्रकाशित हुआ। द्वितीय संस्करण सम्बत् २०१० में प्रकाशित हुआ, एवं प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर विज महात्माओं के पास तक पुस्तक वितरित की गई।

मेरा जन्म स्थान इस्मायलगंज ग्राम, होने के कारण वाल्यकाल से ही स्वामी जी का कृपा पात्र बना रहा। स्वामी जी कान में कुछ लगाये रहते थे एवं नादानुसंधान के आनन्द में मग्न बाह्य जगत व्यवहार से निर्लिप्त रहते थे।

अनन्त श्री विभूषित १०८ रामेश्वरानन्द जी का उपदेश

अनुभवगम्य उद्गार 'जीवन मुक्त विवेक' पुस्तक स्वरूप में प्रस्तुत है, स्वामी जी का लौकिक, पारलौकिक ज्ञान असीम था। गुरुदेव के साहचर्य में एक अपूर्व शान्ति का आनन्द प्राप्त करने का सौभाग्य अनेक वर्षों तक रहा। मुझे चिकित्सा कार्य रूप में जन सेवा हेतु प्रेरणा, श्री

(१३६)

समय-समय पर सत्परामर्श, एवं लौकिक भ्रमा वार्तों में चमत्कारिक रूप से शान्ति पूर्ण उपदेश देकर मुझे सर्वदा अपने संरक्षण में रक्खा ।

भवसागर के मध्य मायामोह रूपः तिमिर को दूर करके सन्मार्ग दिखाने, आधि, व्याधि, ग्रस्त मन एवं शरीर को शान्ति प्रदान करने, कर्म, उपासना, ज्ञान, ईश्वर के प्रति अगाध भक्ति, सम्पूर्ण सन्तोष एवं शान्ति प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत सद्ग्रन्थ के प्रकाशित करने की सत्प्रेरणा, श्री गुरुदेव की कृपा, एवं ईश्वरेच्छा से फलीभूति हुई ।

ग्रन्थ की उपयोगिता अपने एकाग्र चित्त से अवलोकन करने की पद्धति एवं पृष्ठ भूमि के संस्कार अनुसार, स्वयं प्रतीत होगी ।

बालगोविन्द अग्रवान

— — —

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१. प्रकाशकीय दो शब्द ...	५
२. स्वामी रामेश्वानन्द जी का जीवन परिचय ...	६
३. मेरी आयु-काल की सीमित परिभाषा ...	१४
४. भूमिका ...	१७
५. आख्यान ...	१८
६. चित्तवृत्ति ...	१८
७. ब्रह्म ज्ञानी का स्वभाव, वर्णन और उपदेश ...	२१
८. श्रुति प्रमाण ...	२३
९. योग का प्रयोजन ...	२४
१०. मुख्य उपासना ...	२६
११. ज्ञान और अज्ञान का लक्षण ...	२७
१२. अप्रपंची कृत ...	३१
१३. विश्व तैजस और प्राज्ञ का लक्षण ...	३६
१४. महावाक्य ...	४२
१५. षट् लिंग का प्रमाण तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासन ...	४५
१६. समाधि के भेद ...	४६
१७. जीवन मुक्त विवेचन ...	४८

१८.	योगाधिकारी वर्णन	...	...	४६
१९.	गर्भ उपनिषद, मृत्यु उपनिषद और स्वप्न विचार	...	...	५१
२०.	आत्म योग	...	...	५४
२१.	योग क्रिया विवेचन	...	...	५५
२२.	नाडियाँ	...	...	५५
२३.	नाद	...	...	५७
२४.	सन्यास योग वर्णन	...	...	५८
२५.	मन तथा अमन विवेचन	...	...	६१
२६.	आत्मा की शक्ति	...	...	६३
२७.	आत्म बोध	...	...	६५
२८.	गुरु शिष्य संबाद	...	...	६६
२९.	निष्काम कर्म योग का लक्षण	...	...	७६
३०.	आचार्य्य मत	{ अद्वैत निरूपण जाग्रत स्वरूप आत्मा	...	७८
			...	८०
३१.	सत्संग महिमा	...	...	८१
३२.	विद्या का अनुसंधान	...	...	८३
३३.	परावारीणी	...	...	८७
३४.	ज्ञान की भूमिका	...	...	८८
३५.	भक्ति भावना	...	...	९१
३६.	ज्ञान (परोक्ष तथा अपरोक्ष) विचार	...	...	९२
३७.	चित्तवृत्ति	...	...	९३
३८.	ब्रह्म ज्ञानी का लक्षण	...	...	९३

४०.	प्राण का खेल	...	...	६६
४१.	मन बुद्धि का भगड़ा	...	...	६७
४२.	वायु का खेल	...	...	१००
४३.	ईश्वर जीव का भगड़ा	...	...	१०२
४४.	योग मुद्रा (तत्त्वविवेक)	...	...	१०५
४५.	जीवन मुक्त का लक्षण	...	...	१०७
४६.	आत्मा की संसार से विलक्षणता	...	...	१११
४७.	अनुमोदन	...	...	११७
४८.	ग्रंथ कर्त्ता के गुरु तथा दादागुरु का परिचय	...	...	१२२
४९.	श्री श्री स्वामी मग्नानन्द महाराज के कुछ भजन	...	...	१२२
५०.	हनुमान प्रेम चालीसा	...	...	१२७
५१.	गुरु माहात्म्य	...	...	१२९
५२.	समयोग	...	...	१३१
५३.	स्वरूपानुसन्धानम्	...	...	१३४
५४.	अनुभवाष्टकम्	...	...	१३५
५५.	प्रकाशकीय परिशिष्ट	...	...	१३८
५६.	विषय सूची	...	...	१४०



पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

१—तरङ्गिणी प्रकाशन

४ अत्रिअनुसुइया

इलाहाबाद-३

२—लोक भारती

महात्मा गांधी मार्ग

इलाहाबाद

३—जयकृष्णदास हरिदास गुप्त

चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस

विद्याविलास प्रेस,

गोपाल मन्दिर का उत्तर फाटक

वाराणसी

४—हिन्दी बुक सेन्टर फोन नं० २७४८७४

दरियागंज (मोतीमहल के पीछे)

दिल्ली-६



बाह्य विषय का श्रवण नाम है मनन नाम चित्त का
पल पल चित्त कभी न भूलै, निद्रयासन करने का
धरा ध्यान तब लगी समाधी पहुंच गया जहाँ जाने का
बैठ एकान्त अमिय रस पीवे भूलि गया कहने का
अनुभव गम्य वेद अस चित्त बाह्य वेद सब फीका
चित्त पलंग पर सम्हरि बैठि के समुझि रहा अपुनहि का
चार वेद षट शास्त्र पढ़ा जेते नहि पाया उसी का
रामेश्वरानन्द मूढ़ कुबुद्धे गुरु तोहिदीन उसी का



huvar

, BJP